Chapter- 8

अध्याय-8

अनुवाद : समस्या और समाधान

8.1 अनुवाद का भाषावैज्ञानिक पक्ष : समस्या और समाधान
- 8.1.1 भाषाविज्ञान और अनुवाद
- 8.1.2 अनुवाद में भाषाविज्ञान की उपयोगिता
- 8.1.3 भाषा का ध्वनिगत पक्ष और अनुवाद
- 8.1.4 भाषा का शब्दगत पक्ष और अनुवाद
- 8.1.5 भाषा का रूपगत पक्ष और अनुवाद
- 8.1.6 भाषा का वाक्यगत पक्ष और अनुवाद
- 8.1.7 भाषा का अर्थगत पक्ष और अनुवाद
- 8.1.8 भाषा का शैलीगत पक्ष और अनुवाद
- 8.1.9 व्यतिरेकी विश्लेषण और अनुवाद

8.2 अनुवाद का व्याकरणमूलक पक्ष : समस्या और समाधान
- 8.2.1 हिन्दी की रूप रचना एवं प्रयोग और अनुवाद
- 8.2.2 हिन्दी भाषा की शब्द रचना और अनुवाद
- 8.2.3 हिन्दी वाक्य रचना और अनुवाद

8.3 लिप्यंतरण और अनुवाद

8.4 लिप्यंकन और अनुवाद

8.5 साहित्यिक भाषा और अनुवाद
- 8.5.1 कविता और अनुवाद
- 8.5.2 कथा साहित्य और अनुवाद
- 8.5.3 नाटक और अनुवाद
- 8.5.4 निबंध और अनुवाद
- 8.5.5 आलोचना और अनुवाद
- 8.5.6 भाषागत विचलन और अनुवाद
- 8.5.7 भाषागत चयन और अनुवाद
- 8.5.8 भाषागत अप्रस्तुत विधान और अनुवाद
- 8.5.9 बिंब, प्रतीक और अनुवाद
- 8.5.10 मुहावरे, लोकोक्तियाँ और अनुवाद

अध्याय-8

अनुवाद : समस्या और समाधान

8.1 अनुवाद का भाषा वैज्ञानिक पक्ष : समस्या और समाधान

एक भाषा में व्यक्त विचारों को दूसरी भाषा में व्यक्त करना अनुवाद है । भाषा विज्ञान के संदर्भ में कहें तो एक भाषा की संरचनात्मक व्यवस्था को दूसरी भाषा की संरचनात्मक व्यवस्था में ढालने की प्रक्रिया को अनुवाद का नाम दिया गया है ।

भाषा, उच्चारण अवयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह संरचनात्मक व्यवस्था है जिसके माध्यम से समाज विशेष के लोग परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करते है ।[1] 'भाष्' धातु (बोलना) से 'भाषा' शब्द बना है जिसका अर्थ है जो बोला जा सके या जिसे बोला जा सके ।

प्रत्येक भाषा की अपनी स्वतंत्र ध्वनि व्यवस्था होती है, अपनी प्रकृति होती है और अपनी स्वतंत्र संरचना होती है । अतः एक भाषा की सामग्री को दूसरी भाषा में ले जाने के लिए लक्ष्य भाषा की ध्वनि-व्यवस्था, लक्ष्यभाषा की प्रकृति, लक्ष्य भाषा की संरचनात्मक व्यवस्था का विशेष रुप से ज्ञान होना अतिआवश्यक है । दोनों भाषाओं के इस प्रकार के अध्ययन को उन भाषाओं का भाषावैज्ञानिक अध्ययन कहा जाता है । भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन भाषा विज्ञान है । इसलिए अनुवाद करते समय भाषाओं में निहित ध्वनिमूलक विसंगतियाँ, प्रकृति की भिन्नता, संरचनातगत विविधता के कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जिनका समाधान आवश्यक होता है ।

8.1.1 भाषाविज्ञान और अनुवाद :

भाषाओं का विभिन्न पहलुओं के सापेक्ष वैज्ञानिक अध्ययन किया जाए तो उसे भाषा वैज्ञानिक अध्ययन कहते हैं । अर्थात् जिस विषय में 'भाषा' का वैज्ञानिक अध्ययन करते हैं, उसे भाषा विज्ञान कहते हैं । विभिन्न पहलुओं के संदर्भ में किया गया अध्ययन उस पहलु के स्वतंत्र अध्ययन के रुप में होता है अर्थात् भाषा विज्ञान के एक पहलु के रुप में यह अध्ययन होने से भाषा विज्ञान का वह प्रकार कहलाता है । अर्थात् जितने संभवित पहलु हो सकते हैं - भाषाविज्ञान के उतने ही प्रकार माने जा सकते हैं । डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार भाषाविज्ञान के पाँच प्रकार होते हैं : "एक कालिक तुलनात्मक

---

1. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.38

भाषाविज्ञान, बहुकालिक भाषाविज्ञान, (ऐतिहासिक भाषा विज्ञान), तुलनात्मक भाषाविज्ञान, व्यतिरेकी भाषाविज्ञान और अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान ।"[1]

एक कालिक भाषा विज्ञान से आशय भाषाविज्ञान के उस प्रकार से है जिसमें किसी भाषा का एक काल बिन्दु पर अध्ययन करते हैं । इसे 'समकालिक' या 'संकालिक' भाषाविज्ञान के नाम से भी जाना जाता है । कई कालों के सुश्रृंखलित अध्ययन को बहुकालिक भाषा विज्ञान कहते हैं । अर्थात् कई एककालिक विश्लेषणों को श्रृंखलित करके इसका इतिहास देखते हैं, अतः इसे ऐतिहासिक भाषाविज्ञान भी कहते हैं । इसे कालक्रमिक भाषाविज्ञान भी कहते हैं । इतिहास अंततः विभिन्न कालों के अध्ययन का कालक्रमिक श्रृंखलित रूप ही है, अतः मूलतः 'ऐतिहासिक भाषाविज्ञान' का आधार एककालिक भाषाविज्ञान ही है । ऐतिहासिक भाषाविज्ञान पहले आया और उसके मूल आधार 'एककालिक भाषा विज्ञान' पर विद्वानों का ध्यान बाद में गया ।

तुलनात्मक भाषाविज्ञान का प्रयोग मूलतः 18वीं-19वीं सदी में शुरू हुआ, जिसमें दो या दो से अधिक भाषाओं की तुलना करके ध्वनि, शब्द और व्याकरण की समानताओं का अध्ययन किया जाता है तथा उनके आधार पर दो या दो से अधिक भाषाओं को एक स्रोत से विकसित होने का निर्णय करते हैं ।

व्यतिरेक का अर्थ है 'विरोध' । व्यतिरेकी भाषा विज्ञान में दो भाषाओं की तुलना करके दोनों की असमानताओं का अध्ययन किया जाता है । अनुवाद करते समय दोनों भाषाओं की असमानताओं के कारण समस्या पैदा होती है । व्यतिरेकी विश्लेषण से इन समस्याओं का पहले से ही पता चल जाता है और अनुवादक सतर्क हो जाता है जिससे व्यतिरेकी विश्लेषण अति उपयोगी सिद्ध होता है ।

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषा विज्ञान का वह रूप है कि जिसमें भाषा के अध्ययन-विश्लेषण या उसके निष्कर्षों का अन्य कामों के लिए प्रयोग किया जाता है । कोश निर्माण तथा भाषा की पाठ्य पुस्तकें या व्याकरण तैयार करना अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अंतर्गत आता है । अनुवाद भी अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के अंतर्गत आता है ।[2]

इस प्रकार एककालिक भाषाविज्ञान, ऐतिहासिक, भाषाविज्ञान,

---

1. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.40
2. वही, पृ.40, 41, 42

तुलनात्मक भाषाविज्ञान, व्यतिरेकी भाषाविज्ञान और अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान में भाषाओं का वैज्ञानिक तौर से अध्ययन किया जाता है । अतः अनुवाद के संदर्भ में भी कालों के विभिन्न संदर्भ को लेकर एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय जो बातें ध्यान देने योग्य होती हैं तथा समस्याएँ पैदा होती हैं तो एककालिक या ऐतिहासिक भाषाविज्ञान से प्राप्त जानकारी द्वारा अनुवाद को आदर्श की ओर ले जाया जा सकता है । इसी प्रकार तुलनात्मक, व्यतिरेकी और अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान अनुवाद करने के लिए दिशा निर्देश करते हैं ।

8.1.2 अनुवाद में भाषाविज्ञान की उपयोगिता :

भाषाविज्ञान अर्थात् किसी भी भाषा का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करने का विषय । अर्थात् किसी भी भाषा का उस भाषा की संरचना की दृष्टि से, ध्वनि की दृष्टि से, प्रकृति की दृष्टि से आदि अनेक दृष्टि से अध्ययन करना भाषाविज्ञान के अंतर्गत आता है । यह अध्ययन दो या दो से अधिक भाषाओं का भी हो सकता है । चूँकि अनुवाद एक भाषा की भाषा-संरचना को दूसरी भाषा की संरचना में परिवर्तित करना है । अर्थात् एक भाषा में व्यक्त विचारों, भावों आदि को दूसरी भाषा में ज्यों का त्यों उतारना अनुवाद कहलाता है ।

प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है यथा हिन्दी भाषा की प्रकृति छोटे-छोटे और सरल वाक्यों की है, जबकि अंग्रेजी भाषा की प्रकृति लंबे-लंबे और संकीर्ण वाक्यों की । अतः अंग्रेजी की किसी रचना का हिन्दी भाषा में अनुवाद करना हो तो अंग्रेजी के लंबे-संकीर्ण वाक्यों को हिन्दी की प्रकृति के अनुसार छोटे और सरल वाक्यों में ढालना होता है । अतः प्रकृति के संदर्भ में किया गया वैज्ञानिक अध्ययन अनुवाद करते समय अति उपयोगी सिद्ध होता है ।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार "अनुवाद में एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में व्यक्त करना होता है और इसके लिए - स्रोत भाषा के शब्दों के स्थान पर लक्ष्य भाषा के शब्दों को रखना होता है साथ ही स्रोत भाषा की व्यवस्था के स्थान पर लक्ष्य भाषा की व्यवस्था को रखना होता है । अतः एक भाषा के शब्दों तथा उसकी व्यवस्था के स्थान पर दूसरी भाषा के शब्दों तथा उसकी व्यवस्था को लाने के लिए दोनों भाषाओं की तुलना

आवश्यक है । इस तरह अनुवाद मूलतः दो भाषाओं की तुलना पर आधारित होता है, अतः उसका सीधा सम्बन्ध भाषाविज्ञान से है ।"[1]

इस प्रकार अनुवाद दो भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है । भाषा के ध्वनि, रूप, वाक्य, प्रकृति, शब्द आदि के संदर्भ का दूसरी भाषा के इन्हीं संदर्भ में अध्ययन करना उसे रूपान्तरित करना अनुवाद है । अतः अनुवाद प्रक्रिया के पाठ विश्लेषण पहलु में भाषाविज्ञान की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है ।

8.1.3 भाषा का ध्वनिगत पक्ष और अनुवाद :

साहित्यिक भाषा में कलात्मक संयोजन का विशेष महत्त्व होता है । खास तौर से काव्यात्मक भाषा में शब्दों की कलात्मक व्यवस्था शब्दों को और अधिक सार्थक और उनमें निखार लाती है । इस कलात्मक व्यवस्था का मूल आधार ध्वनि होती है । डॉ. राम गोपाल सिंह के अनुसार "साहित्यकार साहित्यिक भाषा में सर्वोत्तम शब्दों के सर्वोत्तम चयन द्वारा ध्वनिगत सौंदर्य की सृष्टि करता है । प्रत्येक वर्ण एवं प्रत्येक शब्दांश का अपना ध्वन्यात्मक महत्त्व होता है और इस महत्त्व के कारण ही शब्द संगीत की निष्पत्ति होती है ।"[2] अर्थात् साहित्यकार अपनी रचना में संदर्भानुसार, कालानुसार, अभिव्यक्त्यनुसार शब्दों को इस प्रकार जमाता है, सजाता है जिससे सारी रचना या वाक्य या वाक्यांश में एक विशेष प्रकार की सार्थक ध्वनि उत्पन्न होती है जिससे संप्रेषित भाव और अधिक सुन्दर हो जाता है । यथा -

"घन घमंड नभ गरजत घोरा",

नागार्जुन की एक रचना में - "हिलती-डुलती गाड़ी में ऐसा लग रहा था कि मालिकाइन के बाग में झूला झूल रहा हूँ । नीचे पैर के बिलकुल नीचे रेल के पहिए हड़ाक-हड़ाक कर रहे थे । जुड़े हुए डब्बे ढब्बर-ढब्बर बोल रहे थे। ऐंजन झज्झखाली-झज्झखाली करती चली जा रही थी ।"[3]

प्रत्येक भाषा की अपनी ध्वनि होती है, अपनी ध्वनि व्यवस्था होती है। इन ध्वनियों का वैज्ञानिक अध्ययन ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। ध्वनि विज्ञान एकाधिक प्रकार का होता है, जिनमें वर्णनात्मक ध्वनि विज्ञान तथा तुलनात्मक ध्वनिविज्ञान - इन दो की सहायता प्रायः अनुवादक

1. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.39
2. अनुवाद भारती, अंक-9, अप्रैल-जून 1997 में प्रकाशित डॉ. राम गोपाल सिंह का लेख 'ध्वनिगत शैली विज्ञान और अनुवाद' पृ.4
3. अनुवाद : सिद्धान्त एवं प्रयोग, डॉ. जी.गोपीनाथन, पृ.87

को लेनी होती है । वर्णनात्मक ध्वनि विज्ञान के आधार पर स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा की ध्वनियों को समझना होता है और फिर तुलनात्मक ध्वनि विज्ञान से ज्ञात होता है कि स्रोत भाषा की किस ध्वनि के लिए लक्ष्य भाषा की किस ध्वनि को रखा जाए ।

भाषा के ध्वनिगत पक्ष पर विचार करते हुए अनुवाद के संदर्भ में डॉ. भोलानाथ तिवारी लिखते हैं "भाषाओं की ध्वनियों के मोटे तौर से चार वर्ग बन सकते हैं : (1) कुछ ध्वनियाँ दोनों भाषाओं में समान होती हैं । (2) कुछ ध्वनियाँ लगभग समान होती हैं । (3) कुछ ध्वनियाँ दोनों में होती हैं, किन्तु एक दूसरे से काफ़ी भिन्न । (4) कुछ ध्वनियाँ ऐसी होती हैं जो स्रोत भाषा में तो होती हैं परन्तु उनके समान, लगभग समान या उनसे मिलती-जुलती ध्वनियाँ लक्ष्य भाषा में नहीं होती ।"[1]

"शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो बहुत कम ही ऐसी भाषाएँ हैं कि जिनकी ध्वनियाँ आपस में पूर्णतः समान होती हैं, परन्तु इस शुद्ध वैज्ञानिकता को छोड़ दें तो काफ़ी भाषाओं की काफ़ी ध्वनियाँ आपस में समान होती हैं । जैसे - अंग्रेजी ग्, ब्, न्, म्, य्, स्, फ़ (G, B, N, M, Y, S-C, F) - हिन्दी ग्, ब, न, म्, य्, स्, फ; रूसी प्, ब्, त्, द्, क्, ग्, म् (पे, बे, ते, दे, को, गे, एम) - हिन्दी प्, ब्, त्, द्, क्, ग्, म्; संस्कृत क्, ख्, ग्, घ्, श्, य्, त्, द, ब, म् - हिन्दी क्, ख्, ग, प्, घ्, श्, य, त, द, प्, ब्, म् आदि व्यंजन समान हैं । लगभग समान ध्वनि का आशय ऐसी ध्वनियों से है जो कुछ बातों में तो समान हैं और कुछ बातों में स्पष्टतः असमान । जैसे - संस्कृत च्, छ्, ज्, झ् स्पर्श ध्वनियाँ है - हिन्दी च्, छ्, ज्, झ् स्पर्श-संघर्षी ध्वनियाँ हैं; संस्कृत न् दन्त्य है - हिन्दी न वर्त्स्य, पंजाबी घ, भ् - हिन्दी घ्, भ् आदि लगभग समान ध्वनियाँ है । भिन्न ध्वनियाँ ऐसी हैं कि जो मूलतः उच्चारण तथा श्रवण के स्तर पर भिन्न होती हैं । अरबी 'स्वाद' अक्षर का 'स्' तथा 'से' अक्षर का 'स्' ये दोनों हिन्दी 'स्' भिन्न हैं, इसी प्रकार अरबी ज़ोय, ज़्वाद तथा ज़ाल के 'ज़्' हिन्दी 'ज्' से भिन्न हैं ।"[2]

इस प्रकार प्रत्येक भाषा में कुछ ध्वनियाँ भिन्न होती हैं जिससे अनुवाद करते समय अनुवादक कठिनाई महसूस करता है । भाषा में स्वर तथा व्यंजन सामान्यतः ध्वनिग्राम होते हैं । हर ध्वनिग्राम के वास्तविक भाषा में

1. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.46
2. वहीं, पृ.47

प्रयुक्त विभिन्न रूपों को संध्वनि कहते हैं । जैसे - अंग्रेजी में एक व्यंजन ध्वनिग्राम क् है जो कभी तो K, कभी C और कभी q आदि के रूप में लिखा जाता है । इस 'क्' ध्वनिग्राम की तीन संध्वनियाँ हैं - (1) क् का थोड़ा महाप्राणित रूप जो कैम्प, कोट आदि शब्दों में मिलता है, (2) क् का थोड़ा पश्चीकृत रूप जो Cow जैसे शब्दों में है जो प्रायः क़ के समान है, (3) क् का सामान्य रूप जो sky जैसे शब्दों में आता है । इसी प्रकार हिन्दी में एक व्यंजन ध्वनिग्राम 'ल्' है । इसकी कई संध्वनियाँ हैं जैसे - लो, लोटा, लोप आदि में 'ल्'; बालटी, कुलटा, उलटी आदि में 'ल्' । ये सभी 'ल्' संध्वनियाँ आपस में थोड़ी-बहुत भिन्न हैं । हिन्दी में वास्तविक रूप से इन्हीं 'ल्' संध्वनियाँ का प्रयोग होता है, परन्तु जब हम कहते हैं कि हिन्दी में एक व्यंजन ल है तो हम 'ल्' ध्वनिग्राम की बात करते हैं जो विभिन्न 'ल्' संध्वनियाँ का प्रतिनिधि है ।[1]

अतएव अनुवाद करते समय भाषा के इस ध्वनिगत पक्ष को बारीकाई से समझना होता है । स्रोत भाषा की ध्वनि व्यवस्था को यथोचित रूप से लक्ष्य भाषा में परिवर्तित करना होता है । कभी-कभी स्रोत भाषा की ध्वनि व्यवस्था लक्ष्य भाषा में पूर्णरूपेण समान नहीं मिल पाती ऐसे संयोग में अनुवाद करते समय कठिनाई का सामना करना पड़ता है ।

8.1.4 भाषा का शब्दगत पक्ष और अनुवाद :

भाषा की सबसे छोटी सार्थक इकाई शब्द है । भाषा का निर्माण ही इन सार्थक इकाइयों से हुआ है । 'शब्द' में भाषा की सारी सार्थक और स्वतंत्र इकाइयाँ आ जाती हैं । शब्द में सम्बन्ध तत्त्व जोड़कर कारकीय रूप और क्रिया-रूप बनते हैं और रूपों से वाक्य बनता हैं । डॉ. भोलानाथ तिवारी का कहना है कि "शब्द वह ईंट है जिसे सम्बन्धतत्त्व (प्रत्यय या कारक - चिह्न आदि) के सीमेन्ट से जोड़कर वाक्य रूपी दीवार बनती है और इसी दीवार से भाषा का सुन्दर महल बनता है ।"[2]

प्रत्येक भाषा की अपनी स्वतंत्र शब्द संरचना होती है । विभिन्न संदर्भो में शब्दों के भी एक ही भाषा में अनेक प्रकार होते हैं । ऐतिहासिक संदर्भ में भारतीय भाषाओं के शब्दों को चार वर्गों - (1) तत्सम - (शुद्ध

1. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.52
2. वहीं, पृ.93

संस्कृतनिष्ठ शब्द जैसे - कृष्ण, गृह, दधि, नृत्य आदि ।) 2. तद्भव - (तत्सम शब्दों से बिगड़कर या विकसित होकर बने शब्दे जैसे - कान्ह, घर, दही, नाच आदि) परवर्ती तद्भव और अर्ध तत्सम शब्द भी इसी में आते हैं जैसे - चन्दर (चन्द्र) किशन (कृष्ण), धरम (धर्म) आदि । 3. विदेशी - (विदेश से आए शब्द जैसे - लॉर्ड, गवर्नर, सिग्नल, स्टेशन, साइकिल, मर्जी, बाग, दरोगा, दफ्तर आदि) 4. देशज - उपर्युक्त में किसी में भी नहीं आते हों वे देशज शब्द है । अधिकांशतः ये शब्द बोलियों से आते हैं ।

अनुवाद करते समय शब्दों का चयन बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है । साथ ही शब्दों का चयन देश-काल पर भी निर्भर करता है । लक्ष्य भाषा में प्राप्य अनेक शब्दों में से उचित एक शब्द का चयन् करना होता है । माना कि मुस्लिम शासनकाल में रचित किसी कृति का हिन्दी में अनुवाद करना हो तो लक्ष्य भाषा हिन्दी में संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों के प्रयोग की जगह अरबी, फ़ारसी या तुर्की के शब्दों का प्रयोग अधिक उचित होगा । किसी नाटक का अनुवाद करना हो और उसमें अंग्रेजों और मुस्लिम सत्ता के बीच वार्तालाप हो रहा हो तो जब अंग्रेज बोलता है तो उसकी भाषा में अंग्रेजी शब्द अधिक और उच्चारण अंग्रेजी की तरह ही होना उचित है जबकि मुस्लिम नायक अपनी उर्दू शैली में संवाद करे वह अधिक प्रभावपूर्ण होगा । 'Oh ! My Son !' का देशकाल के अनुसार विभिन्न शब्दों के चयन से अनुवाद किया जाए तो अधिक प्रभावशाली होगा । जैसे -

- हा पुत्र ! (संस्कृत निष्ठ काल)
- अरे बेटे ! (तद्भव)
- अए पुत्तर ! (पंजाबी)
- राजा बेटे ! आदि । सभी अनुवाद भिन्न-भिन्न स्थिति के हैं । इस प्रकार अनुवाद में शब्द चयन का अति महत्त्व होता है ।

8.1.5 भाषा का रूपगत पक्ष और अनुवाद :

जब कोई शब्द वाक्य में प्रयुक्त होता है, तब वह पद की संज्ञा से अभिहित होता है । अक्षरों (स्वर व व्यंजनों) से रूप की निर्मिती होती है ।[1] इस प्रकार भाषा में रूपों का अत्यंत महत्त्व होता है । अक्षरों (स्वर व व्यंजनों)

---

1. अनुवाद अंक, अप्रैल-जून 1985, में प्रकाशित डॉ. सुमन कुमार गुप्त का लेख 'अनुवाद के भाषा वैज्ञानिक पक्ष' पृ.47

से रूप कैसे बनते हैं इसका अध्ययन रूप विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है । रूप विज्ञान, भाषा विज्ञान का ही एक प्रकार है जिस अनुवाद से सीधा संबंध रहता है । अनुवादक मूल भाषा और लक्ष्य भाषा के रूप विज्ञान से परिचित होता है । रूप रचना का अर्थ है किसी भाषा में मूल शब्दों या धातुओं के आधार पर भाषा में प्रयुक्त होनेवाले विभिन्न रूपों की रचना ।[1] रूप विज्ञान में भाषा में प्रयुक्त रूपों (पदों) का अध्ययन किया जाता है । जैसे 'प्रोक्ति' के भीतर 'वाक्य' मिलते हैं, उसी प्रकार 'वाक्य' के भीतर 'रूप' मिलते हैं । "राम ने रावण को बाण से मारा" वाक्य में चार रूप हैं : 'राम ने', 'रावण को', 'बाण से' तथा 'मारा' । इन रूपों में 'राम ने' कर्ताकारक का रूप, 'रावण को' कर्म कारक का रूप, 'बाण से' करण कारक का रूप तथा 'मारा', 'मार' धातु का भूतकालिक रूप है । पश्चिमी भाषाशास्त्री मॉर्फोलॉजी (रूपविधान) में शब्द रचना को भी लेते हैं तथा उन्हीं के अनुकरण पर बहुत से भारतीय भाषाशास्त्री भी ।[2]

विश्व की किन्हीं दो भाषाओं को शैलीगत भिन्नता का एक प्रमुख कारण उनकी रूप रचना का वैभिन्य है । भाषाओं की रूप प्रक्रिया की भिन्नता के कारण भाषाओं में परस्पर एकदूसरे से भिन्नता का गुण खिलता है ।[3]

रूप रचना की विभिन्नता के कारण अनुवाद के संदर्भ में अनेक समस्याएँ पैदा होती हैं । डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार "अनुवाद में एक भाषा के वाक्यों का 'रूपान्तर' दूसरी भाषा में करते हैं । अतः अनुवाद में स्रोत भाषा के रूपों या रूप समुच्चयों के स्थान पर लक्ष्य भाषा के अपेक्षित रूपों या रूप समुच्चयों को रखते हैं ।"[4] भाषा में रूप रचना की प्रक्रिया में लिंग, लिंगसूचक प्रत्यय आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है अतः अनुवाद प्रक्रिया में इनको नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता ।

8.1.6 भाषा का वाक्यगत पक्ष और अनुवाद :

मनुष्य वाक्यों में सोचता है, बोलता और समझता है । संपूर्ण अर्थ संप्रेषण वाक्यों द्वारा संभवित है । वाक्य को भाषा की मूलभूत सहज इकाई मानने की परम्परा, अत्यंत प्राचीन है और आज भी अनेक भाषाशास्त्री और

1. हिन्दी में व्यावहारिक अनुवाद, पृ.37
2. भाषाविज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.27
3. अनुवाद : सिद्धान्त एवं प्रयोग, जी.गोपीनाथन, पृ.96
4. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.89

वैयाकरणी भी यही मानते हैं । इसलिए वाक्य से लेकर रूप, ध्वनि आदि की संरचना पर विचार करने की परंपरा रही है, तथा है । भाषा के वाक्यों का अध्ययन-विश्लेषण वाक्य विज्ञान के अंतर्गत होता है । वाक्य का अध्ययन पदक्रम, अन्वय, निकटस्थ अवयव, केन्द्रियकता, बीजवाक्यता (मूलवाक्यता), रूपान्तरित वाक्यता, बाह्य संरचना-आंतरिक संरचना, परिवर्तन (कारण और दिशाएँ) आदि की दृष्टि से किया जाता है ।[1] चूँकि वाक्यविज्ञान भाषाविज्ञान की एक शाखा है, जिसमें भाषा के वाक्यों की रचना का अध्ययन होता है, और अनुवाद में एक भाषा के वाक्यों का दूसरी भाषा में रूपान्तर करते हैं । अर्थात् एक भाषा की वाक्य-रचना को दूसरी भाषा की प्रकृति के अनुकूल वाक्य रचना में परिवर्तित करते हैं ।[2]

अतः अनुवाद के संदर्भ में, एक भाषा के वाक्यों को दूसरी भाषा के वाक्यों में ढालते समय अनुवादक को लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुसार वाक्यों की संरचना (पुनर्संरचना) करनी होती है ।

8.1.7 भाषा का अर्थगत पक्ष और अनुवाद :

भाषा-संप्रेषण में मूलतः अर्थ का ही संप्रेषण होता है । भाषा के अर्थगत पक्ष का अध्ययन अर्थ विज्ञान का विषय है । इसमें 'अर्थ क्या है ?', 'अर्थ का निर्धारण कैसे होता है', 'यह कितने प्रकार का होता है ?', 'अर्थ में परिवर्तन के कारण और उनकी दिशाएँ', 'समानार्थता', 'विलोमार्थता', 'बहुअर्थता' आदि का अध्ययन किया जाता है । अर्थ विज्ञान के अंतर्गत अर्थ का अध्ययन एककालिक, कालक्रमिक, तुलनात्मक या व्यतिरेकी भी हो सकता है ।[3] भाषाविज्ञान की इस शाखा का एक मात्र कार्य है स्रोत भाषा में व्यक्त विचार (अर्थ/कथन) को यथावत् लक्ष्यभाषा में प्रस्तुत करना । अनुवाद और अर्थ दोनों ही भाषा के अर्थ-पक्ष से संबंधित हैं । अनुवाद एक भाषा में व्यक्त अर्थ का दूसरी भाषा में प्रेषण है ।[4] पर्यायों के अध्ययन के लिए अर्थविज्ञान का ज्ञान आवश्यक है । इसके अंतर्गत मुहावरों तथा लोकोक्तियों का भी अध्ययन किया जाता है ।

---

1. भाषाविज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.27
2. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.71
3. भाषाविज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.28
4. हिन्दी में व्यावहारिक अनुवाद, पृ.38

अतः अनुवाद में सबसे महत्त्वपूर्ण बात अर्थ संप्रेषण की है । इसके लिए अनुवादक को अर्थविज्ञान से नाता रखना ही होगा ।

8.1.8 भाषा का शैलीगत पक्ष और अनुवाद :

प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्ट शैली होती है । साथ ही एक ही भाषा की विभिन्न शैलियाँ भी हो सकती हैं । भाषा का व्याकरण और शब्द राशि सारे विषयों के क्षेत्रों में मूलतः समान ही होती है । किन्तु उनके प्रयोग की शैली भिन्न होती है । यह व्यक्तिगत रहती है । व्यक्तिगत को सीधे, सरल शब्दों में केवल पहचाना जा सकता है उसी तरह व्यक्तिगत शैली को भी पहचाना ही जाता है ।[1] भाषा की शैली से मतलब है अभिव्यंजना के प्रकार से। सेंथाल का मानना है कि किसी विचार या कथ्य को सहायक तत्त्व होता है उसे शैली कह सकते हैं । शैली को 'अभिव्यंजना की प्रणाना' मान लेने पर ध्वनिपरक, शब्दपरक एवं व्याकरणिक दृष्टि अभिव्यंजना के जो विशिष्ट तत्त्व होंगे, उन्हीं का अध्ययन शैली में होता है ।[2] शैली में वह सब कुछ आ जाता है, जो किसी भी रचना में कथ्य को पाठक या स्रोता तक पहुँचाने के लिए होता है, और जिसे समवेततः अभिव्यक्ति-पक्ष या कला पक्ष की संज्ञा देते हैं । काव्य की शैली की परख मुख्यतः शब्दचयन, अलंकार, शब्द-शक्ति, गुण, नाद-सौंदर्य, ध्वनि, दोष तथा छन्द आदि से होती है । हिन्दी में शैली के भेदों के नाम पर व्यास शैली, समास शैली, अलंकृत शैली, उदात्त शैली, मुहावरेदार शैली, लाक्षणिक शैली, व्यंजक शैली, गुंफित शैली, सरल शैली, सामान्य शैली तथा सपाट शैली आदि के नाम लिए जाते हैं । विश्व की अन्य भाषाओं में भी इसी प्रकार की कुछ कम या अधिक शैलियों के नाम हो सकते हैं ।[3] शैली का महत्त्व केवल कविता और सृजनात्मक साहित्य में ही नहीं है अपितु वैज्ञानिक साहित्य, व्यावसायिक पत्र, कानूनी अभिलेख आदि में भी शैली का स्थान महत्त्वपूर्ण है ।

अनुवाद के संदर्भ में शैली का बुनियादी तत्त्व शब्दों का चयन है । शैली प्रमुख रूप से शब्दों के चुनाव पर निर्भर है । शब्द चयन संस्कृतनिष्ठ, अरबी-फ़ारसी, हिन्दुस्तानी आदि रूप में हो सकता है । डॉ. भोलानाथ तिवारी

1. अनुवाद भारती; अंक 8, जनवरी-मार्च 1997 में प्रकाशित डॉ. एन.ई.विश्वनाथ अय्यर का लेख, 'अनुवाद और शैली', पृ.26
2. अनुवाद : सिद्धान्त एवं प्रयोग, डॉ. जी. गोपीनाथन, पृ.65
3. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.33

के अनुसार "शैली-प्रधान साहित्यिक विधाओं की हर भाषा में अपनी-अपनी शैलियाँ होती हैं और ये शैलियाँ भी हर युग में एक नहीं होतीं । अनुवादक को लक्ष्य भाषा के काल और उसकी परंपरा के अनुसार शैली अपनानी चाहिए ।"[1] लक्ष्य और स्रोत भाषा के ध्वनिमूलक शब्दों, ध्वनिमूलक अलंकारों, लिप्यन्तरण, ध्वनि अनुकूलन आदि का अनुवाद में अति महत्त्व होता है । लक्ष्य भाषा में स्रोत भाषा के इस प्रकार के शब्द अलंकार आदि मिलना सदैव संभव नहीं होता । इसलिए सावधानीपूर्वक अनुवाद करना होता है ।

8.1.9 व्यतिरेकी विश्लेषण और अनुवाद :

तुलनात्मक भाषा विज्ञान का प्रयोग मूलतः 18वीं-19वीं सदी में शुरु हुआ था, जिसमें दो या दो से अधिक भाषाओं की तुलना करके ध्वनि, शब्द तथा व्याकरण की समानताओं का अध्ययन किया जाता था तथा उनके आधार पर दो या दो से अधिक भाषाओं को एक स्रोत से विकसित होने का निर्णय किया जाता था । भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण का आधार तुलनात्मक अध्ययन से प्राप्त समानताएँ ही थीं । तुलना में जो तथ्य समान होकर असमान या विपरीत मिलते थे उन्हें भाषाविज्ञान में विशेष उपयोग के नहीं माने जाते थे । परन्तु बीसवीं सदी के द्वितीय चरण के अंत में इन अंतरों की उपयोगिता का पता भाषा शिक्षा और अनुवाद के प्रसंग में चला और भाषाओं में अंतर ज्ञात करने के लिए व्यतिरेकी भाषाविज्ञान नाम से भाषा विज्ञान का एक अलग प्रकार ही मान लिया गया ।[2] 'व्यतिरेक' का अर्थ है 'असमानता' या 'विरोध' । जब अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करता है तो जो संरचनात्मक तथ्य दोनों कठिनाई नहीं होती, परन्तु जो तथ्य समान नहीं होते अर्थात् जिनकी दृष्टि से दोनों भाषाओं में व्यतिरेक होता है, वहाँ अनुवादक को समस्या का सामना करना पड़ता है । इस तरह व्यतिरेकी विश्लेषण से अनुवादक के रास्ते में आनेवाली सारी संभावित कठिनाईयों का पहले से पता चल जाता है, तथा अनुवादक सतर्क हो जाता है । अतः व्यतिरेकी विश्लेषण अनुवाद के लिए अत्यंत उपयोगी है । उदाहणार्थ -

Rahul and Sachin are playing.

राहुल और सचिन खेल रहे हैं ।

---

1. अनुवाद भारती; अंक 8, जनवरी-मार्च 1997 में प्रकाशित डॉ. भोलानाथ तिवारी का लेख, 'अनुवाद की शैलियाँ', पृ.14
2. भाषा विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.19

Rahul and Sachin are sitting in the class.

राहुल और सचिन वर्ग में बैठ रहे हैं ।

यहाँ दोनों वाक्यों में काल समान है फिर भी दूसरे वाक्य का अनुवाद 'वर्ग में बैठ रहे हैं' के स्थान पर 'वर्ग में बैठे हैं' होना चाहिए । अत: यहाँ काल के संदर्भ में व्यतिरेक हुआ है । ऐसा कहना चाहिए ।

दो भाषाओं में व्यतिरेक ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ, लिपि आदि स्तरों पर मिलता है ।[1]

ध्वनियों का व्यतिरेक अधिकांशत: व्यक्तिवाचक नामों में अनुवादक के सामने समस्या पैदा करता है । हिन्दी में कुछ लोग तमिल, कुछ तामिल तो कुछ तमिष् लिखते हैं तथा बोलते हैं, जबकि वस्तुत: मूल शब्द इन तीनों से ही अलग है । फ्रांस के राष्ट्रपति के नाम की वर्तनी Mitlerand है तथा उच्चारण मितराँ है । अत: इसका हिन्दी में अनुवाद मितराँ ही लिखा, बोला जाना चाहिए । हिन्दी में वर्तनी की अपेक्षा उच्चारण का ही अनुसरण करना चाहिए और किया भी जाता है । अंग्रेजी के - Psycology, Pneumatic, know, Neighbour, Palm, Psalm आदि को क्रमश: सायकलॉजी, न्यूमेटिक, नो, नेबर, पाम, साम आदि लिखा और बोला जाता है । परन्तु कभी-कभी उच्चारण का अनुसरण न करके वर्तनी का ही अनुसरण किया जाता है जैसे - बंगाली में 'चॉक्रबोर्ती' की जगह 'चक्रवर्ती' उड़िया के 'सीटा' के स्थान पर सीता ही बोला-लिखा जाना चाहिए ।

शब्द स्तर पर भी व्यतिरेक पाया जाता है । जैसे हिन्दी के 'हुक्का' के लिए अंग्रेजी में 'Indeginour pipe' किसी ने कहा तो किसी ने 'earthen pipe' तो किसी ने 'हुक्का' ही रहने दिया । शब्द के व्यतिरेक के अलावा अर्थगत व्यतिरेक भी पाया जाता है जैसे हिन्दी 'कच्चा' 'जो पका न हो' इसके लिए आता है तो नेपाली में 'कच्चा' 'खराब' के संदर्भ में भी प्रयुक्त होता है। मराठी में पति के लिए 'नवरा' शब्द है गुजराती में इसका अनुवाद करना हो तो पति ही करना होगा यदि 'नवरा' शब्द को ही रख दिया जाए तो उसका अर्थ होगा - 'निकम्मा', तमिल में 'पशु' का अर्थ 'गाय' है । रूप स्तर पर you sitdown का आप बैठिए, आप बैठें, तुम बैठो, तू बैठ आदि हिन्दी

1. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.43

में व्यतिरेक पैदा करते हैं । वाक्य स्तर पर भी व्यतिरेक पाया जाता है यथा - Atalbihari is a good orater 'अटलबिहारी अच्छे वक्ता हैं' (एक नहीं) ।

इस प्रकार अनुवाद करते समय व्यतिरेकी भाषाविज्ञान का ज्ञान अत्यावश्यक है । अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है । अतः अनुवाद सावधानीपूर्वक की जानेवाली प्रक्रिया है तो व्यतिरेकों का समाधान आवश्यक है ।

8.2 अनुवाद का व्याकरणमूलक पक्ष : समस्या और समाधान :

विश्लेषण करना अर्थात् व्याकरण । प्रत्येक भाषा का अपना व्याकरण होता है । भाषा एक व्यवस्था है । भाषा के विभिन्न अंग - वर्ण, शब्द, वाक्य आदि में निश्चित और नियमबद्ध सम्बन्ध होते हैं । इन्हीं निश्चित और नियमबद्ध संबंधों को योजनाबद्ध रूप से लिखकर रखे गए शास्त्र को उस भाषा का व्याकरण कहा जाता है । अर्थात् व्याकरण वह शास्त्र है जो हमें किसी भाषा के शुद्ध रूप को लिखने तथा बोलने के नियमों का ज्ञान कराता है ।[1]

चूँकि प्रत्येक भाषा का अपना स्वतंत्र व्याकरण होता है, अतः अनुवाद करते समय एक भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था को दूसरी भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था में ढालना होता है । इस प्रकार अनुवादक को दोनों भाषाओं की व्याकरणिक संरचना का समुचित ज्ञान अत्यावश्यक है । यदि इस प्रकार का ज्ञान न होगा तो अनुवाद में त्रुटि रहने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। कभी-कभी लक्ष्य भाषा की व्याकरणिक संरचना स्रोत भाषा की व्याकरणिक संरचना से भिन्न भी हो सकती है । ऐसी स्थिति में अनुवाद में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं । जिनमें हिन्दी भाषा की रूपगत, शब्दगत, वाक्यगत, लिप्यन्तरण, लिप्यंकन आदि अनेक पहलुओं में समस्याएँ पैदा होती हैं ।

8.2.1 हिन्दी की रूप रचना एवं प्रयोग और अनुवाद :

वाक्य रूपों से बनते हैं । हिन्दी भाषा की रू-रचना के अनेक प्रकार हैं । डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार हिन्दी की रूप रचना के निम्नलिखित प्रकार हैं[2] :

(क) प्रत्ययों से शब्दों की रचना,

(ख) उपसर्ग से शब्दों की रचना,

(ग) समासों से शब्दों की रचना,

---

1. हिन्दी व्याकरण, डॉ. मनीषा शर्मा, आदित्य, पृ.6
2. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.89

(घ) पुल्लिग रूपों से स्त्रीलिंग रूप-रचना,

(ङ) एकवचन से बहुवचन,

(च) मूल रूप से विकृत रूप-रचना,

(छ) संज्ञा तथा सर्वनाम से कारकीय रूप-रचना,

(ज) विशेषण से तुलनात्मक रूप रचना,

(झ) धातु से क्रिया रूप ।

(क) **प्रत्ययों से शब्दों की रचना :**

हिन्दी में मूल शब्द में प्रत्यय लगाकर अनेक शब्दों की रचना की जाती है । प्रत्यय लगाकर अनेक प्रकार से शब्दों की रचना की जाती है । यथा -

(1) **संज्ञा से विशेषण :**

लोभ - लोभी ⇨ लोभ + ई = लोभी

भूख - भूखा ⇨ भूख + आ = भूखा

(2) **विशेषण से संज्ञा :**

शूर - शूरता ⇨ शूर + ता = शूरता

निपुण निपुणता ⇨ निपुण + ता = निपुणता

(3) **संज्ञा से क्रिया :**

जूता - जुतियाना ⇨ जुतिया (ना)

(4) **संज्ञा से क्रिया विशेषण :**

कृपा - कृपया

(5) **क्रिया से विशेषण :**

सो - सोया, सोता

(6) **विशेषण से क्रियाविशेषण :**

मुख्य - मुख्यतः

प्रमुख - प्रमुखतः

(7) **सर्वनाम से विशेषण :**

हम - हमारा

तुम - तुम्हारा

(8) **क्रिया से क्रिया विशेषण :**

सो - सोने

खो - खोने

(ख) उपसर्ग से शब्दों की रचना :

उपसर्गों से विभिन्न प्रकार से शब्दों की रचना की जाती है, यथा -

(1) संज्ञा से क्रिया विशेषण :

जीवन - आजीवन ⇨ आ + जीवन

(2) विशेषण से क्रिया विशेषण :

असल - दरअसल ⇨ दर + असल

(3) संज्ञा से विशेषण :

जवाब - लाजवाब ⇨ ला + जवाब

(4) प्रत्यय से विशेषण :

ज्ञ - सुज्ञ ⇨ सु + ज्ञ

(5) संज्ञा से संज्ञा :

भाग - विभाग ⇨ वि + भाग

(6) विशेषण से विशेषण :

विख्यात - सुविख्यात ⇨ सु + विख्यात

(ग) समासों से शब्दों की रचना :

समासों के प्रयोग से शब्दों की रचना की जाती है यथा -
न्यायाधीश, बिजलीघर, डाकघर, कबूतरखाना आदि ।

(घ) पुल्लिग रूपों से स्त्रीलिंग रूप रचना :

पुल्लिग रूप से स्त्रीलिंग रूपों की रचना की जा सकती है यथा -
कच्चा - कच्ची, पक्का - पक्की, पका - पकी, खेलता - खेलती, जाता - जाती आदि ।

(ङ) एकवचन से बहुवचन :

एकवचन के शब्द से बहुवचन के शब्द बनाए जा सकते हैं, यथा -
जूता - जूते, खेला - खेले, रोया - राए, सुनहरा - सुनहरे आदि ।

(च) मूल रूप से विकृत रूप :

शब्द के मूल रूप से विकृत रूप बनाए जाए सकते हैं । शब्दों में विकार उत्पन्न करके विकृत रूप बनाए जा सकते हैं । यथा -

जूता : जूते - जूतों

अच्छा : अच्छी - अच्छे

छोटा : छोटी - छोटे आदि ।

(ज) **विशेषण से तुलना बोधक रूप-रचना :**

प्रिय : प्रियतम

लघु : लघुत्तम, लघुतर

श्रेष्ठ : श्रेष्ठतम, श्रेष्ठतर,

बेहतर : बेहतरीन

(झ) **धातु से क्रिया रूप :**

(1) कालबोधक - है, था, हैं, थे, थी आदि ।

(2) कृदन्त - चलता, चला, चलना आदि ।

(3) तिङन्त - चलें, चलूँ, चलो आदि ।

इस प्रकार हिन्दी में रूपों की रचना के अनुसार अनुवाद कार्य करना होता है । और अनुवाद करते समय स्रोत भाषा की रूप रचना और लक्ष्य भाषा की रूप रचना का ज्ञान अत्यावश्यक है । क्योंकि स्रोत भाषा के शब्दों की रचना को पहचानकर लक्ष्य भाषा में उसी तरह शब्द-रचना की जा सके । भाषा में रूप-रचना के केवल सामान्य नियम ही नहीं होते, कभी-कभी अपवाद भी पाए जाते हैं । इन अपवादों से अनुवादक परिचित होना चाहिए । जैसे आकारांत पुल्लिग के रूप ए, ओं, ओ लगाकर बनते हैं - गधा, गधे, गधों, गधो परन्तु देवता, राजा, मामा, चाचा, लाला, बाबा, काका आदि अपवाद हैं। अतः अनुवादक से भूल होने की संभावनाएँ अधिक रहती है । इन तथ्यों से अनुवादक परिचित होगा तो समस्याओं का निराकरण आसानी से होगा ।

स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा दोनों की रूप रचना की भिन्नता भी अनुवादक को असमंजस में डाल देती है । अनुवाद करते समय रूपगत समस्याओं में लिंग, वचन, कारक विशेषण, सर्वनाम, अव्यय, क्रिया आदि के प्रयोगों में वैषम्यता प्रमुख है ।

अनुवादक के समक्ष लिंग संबंधी समस्या सर्वप्रथम आती है । प्रत्येक भाषा की अपनी लिंग व्यवस्था होती है । किसी भाषा में तीन लिंग होते हैं तो किसी में दो । अतः अनुवाद करते समय तीन लिंगों का अनुवाद दो लिंगों की सीमा में या दो लिंगों का तीन लिंगों में अनुवाद करना भी पड़ सकता है । यहाँ अनुवादक की कसौटी होती है । अंग्रेजी, संस्कृत, गुजराती, मलयालम आदि में तीन लिंग हैं जबकि हिन्दी में दो ही लिंग - स्त्रीलिंग और पुल्लिग । जैसे अंग्रेजी में 'Moon' स्त्रीलिंग है, जिसमें कोमलता, शीतलता आदि के

भाव हैं जबकि हिन्दी में 'चन्द्रमा' पुल्लिग है । गुजराती में 'व्यक्ति' शब्द स्त्रीलिंग है जबकि हिन्दी में पुल्लिग है । वैलोप्पिल्लिल् श्रीधर मेनन की मलयालम कविता 'कौशा' में कौआ स्त्री या लड़की के रूप में आता जबकि हिन्दी में 'कौआ' पुल्लिग ही रहेगा । अत: कविता के अनुवाद में अतिरिक्त टिप्पणी देनी होगी कि यहाँ 'कौआ' शब्द स्त्रीलिंग है । इसी प्रकार हिन्दी में छोटे-बड़े, कठोर-कोमल आदि भावों को प्रदर्शित करते शब्द हैं, यथा - घंटी - घंटा, हथौड़ी - हथौड़ा, लुटिया - लोटा, डिबिया - डिब्बा, गुड्डा-गुड़िया, थाली-थाल आदि । अन्य भाषा में इनका अनुवाद बड़ा ही कठित सिद्ध होता है । अनुवाद हो भी जाएगा तब भी लिंग की इस प्रकार की सूक्ष्म कल्पना के नष्ट हो जाने की संभावना रहती है । हिन्दी के कुछ शब्द भावों का बड़ी आसानी से संप्रेषण कर देते हैं । यथा - नाजुक भावयुक्त

"तुम्हारे बिन जी ना लगे घर में,
बलमजी तुम से मिला के अँखियाँ"

यहाँ अँखियाँ शब्द के जो भाव हैं वे भाव आँख, नेत्र, नयन, चक्षु आदि में नहीं हैं अत: 'अँखियाँ' का भाव सहित अनुवाद करना एक समस्या है ।

इन रूपगत समस्याओं का निराकरण तो यही है कि इस प्रकार के भावों का अनुवाद किया जाए । शब्दानुवाद ऐसी स्थिति में जोखिम से खाली नहीं होगा ।

8.2.2 हिन्दी भाषा की शब्द रचना और अनुवाद :

अर्थ के स्तर पर भाषा की सबसे छोटी इकाई शब्द है । भिन्न-भिन्न भाषाओं की शब्द रचना भी भिन्न-भिन्न होती है । मूल संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, धातु, अव्यय आदि सार्थक इकाइयाँ शब्द के अंतर्गत आती हैं ।[1]

प्रकारों के संदर्भ में, शब्द के तीन प्रकार होते हैं[2]

(1) रूढ़ शब्द : रूढ़ अर्थात् जमा हुआ । जिनके सार्थक खंड नहीं किए जा सकते ऐसे शब्दों को रूढ़ शब्द कहते हैं । ये मूलत: एक शब्द होते हैं । जैसे 'रथ' शब्द में 'र' और 'थ' अक्षरों के पृथक् कोई अर्थ नहीं हैं । ऐसे अन्य शब्द हैं : जल, घर, धन, नम, आकाश, देश, नख, रात आदि ।

---

1. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.93
2. हिन्दी व्याकरण, डॉ. मनीषा शर्मा, आदित्य, पृ.25

(2) यौगिक शब्द : यौगिक शब्द वे शब्द हैं जो अनेक सार्थक खंडों के योग से बनते हैं । अधिकांश शब्द यौगिक ही होते हैं उपसर्ग, प्रत्यय, स्वतंत्र शब्द आदि के योग से इन शब्दों का निर्माण होता है । जैसे - विद्या+धन = विद्याधन, शिव+आलय = शिवालय, अ+धर्म = अधर्म, नम्र+ता = नम्रता आदि ।

(3) योगरूढ़ शब्द : योगरूढ़ अर्थात् योगयुक्त रूढ़ । ऐसे शब्द योगरूढ़ शब्द कहलाते हैं जो योगयुक्त हैं, जिनमें योग है, अनेक सार्थक खंड हैं, फिर भी ये रूढ़ हैं । ये शब्द यौगिक होते हुए भी किसी एक अर्थ विशेष का बोध कराते हैं । जैसे - 'जलज' = जल+ज, यह यौगिक शब्द है जिसमें 'जल' (पानी) शब्द और 'ज' (उत्पन्न होना) शब्द हैं परन्तु यह शब्द यौगिक होने से इसका सामान्य अर्थ - वह वस्तु, चीज़ या प्राणी जो 'पानी' में 'उत्पन्न' होता है जैसे मछली, जलचर कीड़े, काई, फ़फूँद, घास आदि लेकिन इसका सामान्य अर्थ न होकर विशेष अर्थ - 'कमल' होता है । अत: ऐसे शब्दों को योगरूढ़ शब्द कहते हैं । अन्य शब्द - लंबोदर, पंचामृत, विषधर, महर्षि, नीलकंठ, सरोज, पंकज, सरसिज आदि ।

रूढ़ शब्दों के अलावा अन्य सभी शब्द बनाए गए हैं । भाषा में शब्द निर्माण के कुछ विशिष्ट सिद्धांत होते हैं जिनके माध्यम से शब्दों का निर्माण किया जाता है । उपसर्गों के योग से, प्रत्ययों के योग से, समास के योग से, उपसर्ग-प्रत्यय के योग से, सादृश्य के आधार पर, विदेशी शब्दों का अनुकूलन करके, अनुवाद के द्वारा, प्राचीन शब्दों में अर्थ परिवर्तन करके, संक्षेपण से (आदि संक्षेपण, मध्य संक्षेपण, अंत संक्षेपण), इनके अलावा विभिन्न शब्दों के अंशों को लेकर भी शब्द निर्माण किया जाता है । इन सभी के उदाहरण इस प्रकार हैं : उपसर्ग के योग से - प्रख्यात, विख्यात, सुनिधि, सुयोग, सुपुत्र आदि प्रत्यय के योग से - नम्रता, क्रोधी, लोभी, ममत्त्व, स्वत्व, दयावान आदि समास के योग से - जिलाधीश, न्यायालय, शिवालय, डाकघर आदि उपसर्ग-प्रत्यय के योग से - सुपात्रता, अनिच्छित, सुदृष्टिहीनता आदि सादृश्य के आधार पर - बराती के सादृश्य के आधार पर घराती, देहाती, शहराती, संपादकीय, लेखकीय, अनुवादकीय आदि ।

विदेशी शब्दों का अनुकूलन करके - तौलिया, लालटैन, बिस्कुट, गमला, जनवरी, फरवरी, मार्च आदि ।

अनुवाद के द्वारा - Parameter - परिमाण, Lawlessness - विधिहीनता, Abnormal - अवसामान्य, Underestimate - अवप्राक्कथन, Antibiotic - प्रतिजैविक आदि ।

प्राचीन शब्दों में अर्थ परिवर्तन करके - आकाशवाणी, बिजली, हरिजन, हरिभक्त, घर के अर्थ में परिवर्तन करके डाकघर, तारघर, बिजलीघर, टिकटघर, पंपघर आदि ।

संक्षेपण से - इसरो, इफ्को, युनेस्को, राडार, टाडा, सेवा आदि । आदि संक्षेपण से - पेट्रोलियम से पेट्रोल, माइक्रोफ़ोन से माइक, बाइसिकल से बाइक, प्रिंसीपाल टीचर से प्रिंसीपाल, कैपिटल सिटी से केपिटल आदि ।

मध्य संक्षेपण से - रेफ्रिजरेटर से फ्रीज

अंत संक्षेपण से - नेकटाई से टाई, मोटरकार से कार, टेलिफ़ोन से फ़ोन, रेल्वे स्टेशन से स्टेशन आदि ।

दो शब्दों के शुरू के अंश से - शुदि, शुभ दिवस, बदि - बहुल दिवस, इन्का - इन्दिरा कॉंग्रेस, फूलतेल - फुलेल, कम्पलीट प्लान - कॉम्प्लान आदि ।

दो शब्दों के आदि और अंत से - मोटर+होटेल = मोटेल भारत+यूरोपीय = भारोपीय आदि ।

इस प्रकार और अनेक प्रकार से शब्दों का निर्माण किया जा सकता है। अनुवाद के संदर्भ में शब्दस्तरीय समस्या में शैलीगत समस्या सर्वप्रथम आती है । शैली का बुनियादी तत्त्व है शब्दों का चयन । शैली का आधार ही शब्द चयन है । साहित्य की शैली उसमें प्रयुक्त शब्दों से ही पहचानी जाती है और इससे ही साहित्यकार को भी पहचाना जाता है । प्रयोजनमूलक भाषा क्षेत्रों में शब्दों का चुनाव, पारिभाषिक शब्दों के चुनाव की ओर उन्मुख होकर संबंधित क्षेत्र विशेष की शैली का रूप प्रदान करता है ।

डॉ. जी. गोपीनाथन के अनुसार हिन्दी की प्रमुख रूप से तीन शैलियाँ हैं : (1) संस्कृत निष्ठ शैली (2) अरबी-फ़ारसी शब्दावली से युक्त शैली और (3) बीच की शैली जिसे हिन्दुस्तानी शैली भी कहते हैं । डॉ. स्मेकाल ने हिन्दी की शैलियाँ में आम सामान्य सूचना की शैली, विशिष्ट कार्यवाही या व्यावसायिक शैली आदि को माना है ।[1]

1. अनुवाद : सिद्धान्त एवं प्रयोग, डॉ. जी. गोपीनाथन, पृ.42

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने शब्दों को विभिन्न चार वर्गों में रखा है तत्सम, तद्भव, विदेशी और देशज ।[1]

भाषा की शैली में इस प्रकार के शब्द अनुवाद के संदर्भ में समस्या पैदा करते हैं । स्रोत भाषा की शैली में यदि तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया हो तो लक्ष्य भाषा में भी इसी अर्थ का, शैली का शब्द रखना होता है । इसी तरह तद्भव, विदेशी और देशज शब्दों को भी अनुवाद में ढालना होता है ।

शब्द के अर्थ स्तर का ध्यान रखकर अनुवाद करना होता है । शब्द, अभिधा, अर्थयुक्त, लक्षणा अर्थयुक्त या व्यंजना अर्थयुक्त होते हैं । लक्ष्य भाषा की सामग्री के अनुसार ऐसे शब्द रखने होते हैं जो भाव को बनाए रखे । जैसे प्रयोजनमूलक क्षेत्र की किसी भी सामग्री के लिए अभिधार्थी शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिए । तथा साहित्यिक सामग्री का यथोचित अनुवाद किया जाना चाहिए । तथा साहित्यिक सामग्री का यथोचित अनुवाद किया जाना चाहिए । जैसे 'राधा-कृष्ण' शब्द के स्थान पर 'राधा-देवकीनंदन' या 'राधा-कंसनिकंदन' शब्द प्रयोग विचित्र होगा ।

ध्वनि के स्तर पर शब्दों का उचित चयन करना चाहिए । साहित्यिक रचनाओं में ध्वनिगत शब्द प्रयोग अधिक होता है । इस प्रकार के ध्वनिमूलक शब्दों को अनुवाद में उतार पाना बहुत कठिन होता है । जैसे -

कंकण किंकिनी नूपुर धुनि सुनि ।।

में तुलसीदास ने नूपुर की आवज ही शब्दों में ढाल दी है । इसका अन्य भाषा में अनुवाद करना कठिन होगा । इसी तरह Twinkle Twinkle Little star में Twinkle Twinkle ध्वनिमूलक शब्द है । इसी तरह नागार्जुन की एक रचना में रेल के इंजन की आवाज "झज्झखाली... झज्झखाली" डिब्बो की आवाज "ढब्बर-ढब्बर" आदि शब्दों के प्रयोग किए गए हैं जिनका अंग्रेजी या अन्य भाषा में समतुल्य अनुवाद करना टेढ़ी खीर है । इसी प्रकार झनझन, रिमझिम-रिमझिम, टनटन, खनखन, खटखट, किलकिलाना, झर-झर, चरमर आदि ध्वनिमूलक शब्दों को अनुवाद में उतार सकना बड़ा ही कठिन सिद्ध होता है ।

कुछ ध्वनिमूलक शब्द ऐसे होते हैं कि उनके लिए लक्ष्य भाषा में समान ध्वनि मिलना असंभव है । ऐसे में अनुवाद कोई करे तो क्या करे !

---

1. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.93

जैसे - जगमगाहट, चकाचक, गिड़गिड़ाना, छनछनाना आदि ।[1] अतः अनुवाद में इन शब्दों का भावानुवाद ही किया जाना चाहिए, क्योंकि इन शब्दों के ध्वनिपरक सौंदर्य को अनुवाद में ला पाना असंभव ही है ।

पुनरुक्त शब्दों के कारण भी अनुवादक असमंजस से पड़ जाता है । पुनरुक्त शब्दों में एक शब्द ही या उसके पर्यायवाची शब्द की आवृत्ति होती है जैसे बड़े-बड़े, पीले-पीले, आस-पास, अड़ौस-पड़ौस, धूम-धाम आदि । इस प्रकार के शब्दों को अनुवाद में लाना असंभव है । इनका शब्दशः अनुवाद नहीं हो सकता जैसे - अड़ौस-पड़ौस का अंग्रेजी क्या होगा ?

शब्दों की बहुअर्थता भी अनुवादक के लिए कठिनाई बनकर आती है। जैसे -

रहिमन पानी राखिए
बिनु पानी सब सून
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुस, चून

यहाँ 'पानी' शब्द में शब्दस्तरीय बहुअर्थता है : पानी अर्थात् इज्जत, चमक और जल । इसी तरह तेज आँधी, तेज लड़का, तेज धार, तेज सब्जी, तेज भाव, तेजकार, तेज घड़ी आदि में तेज अर्थात् क्रमशः वेग, चतुर, तीक्ष्ण, तीखी (मसालेदार), मँहगा, गति, आगे चलने के संदर्भ में) यहाँ सभी तेज के लिए 'Fast' करने से अनुवाद हास्यास्पद हो जाएगा । इसी तरह Natural शब्द के लिए

Natural Beauty - प्राकृतिक सौंदर्य
Natural Bed - नैसर्गिक तल
Natural Affection - सहज स्नेह
Natural Calamity - दैवी संकट
Natural Born - देशजात
Natural Child - औरस संतान
Natural Death - स्वाभाविक मृत्यु

यहाँ Natural शब्द शब्द स्तरीय बहुअर्थता लिए हुए है ।[1]

सांस्कृतिक शब्द अनुवाद में बहुत समस्या पैदा करते हैं क्योंकि प्रत्येक भाषा के अपने-अपने सांस्कृतिक शब्द होते हैं किन्तु चूँकि प्रत्येक भाषा की अपनी संस्कृति होती है । प्रत्येक संस्कृति की अपनी एक विशिष्ट शब्दावली

---

1. अनुवाद कला : सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ.23

होती है, सांस्कृतिक संकल्पनाएँ होती हैं । स्रोत भाषा की सांस्कृतिक संकल्पनाएँ लक्ष्य भाषा में मिल पाना हमेशा संभव नहीं होता । संस्कृति के परिवेश लक्ष्य भाषा की संस्कृति में कभी-कभी नहीं मिल पाते तो ऐसे में पाद टिप्पणी देकर ही अनुवाद को सार्थक किया जा सकता है । भारतीय संस्कृतिमूलक शब्दः सिंदूर, बिन्दी, चूड़ी, जनेऊ, धोती, संमिधा की लकड़ी, हवन, स्वाहा, साड़ी आदि का पाश्चात्य भाषाओं में अनुवाद करते समय पाद टिप्पणी ही देनी पड़ेगी । भारतीय महीनों के नाम आदि अनुवादक के लिए टेढी खीर हैं ।

अम्मा खाए आलू भून,
पहले कुर्ता वै पतलून,
आधा फागुन आधा जून ।

यहाँ 'भून', 'कुर्ता', 'फागुन' आदि का अनुवाद नहीं हो सकता । सांस्कृतिक आदान-प्रदान के कारण एक देश के भाषा-भाषी लोगों के रहन-सहन, खान-पान, पहनावा-ओढ़ावा आदि का भी आदान-प्रदान होता है । ऐसी स्थिति में अनेक संकल्पनाएँ, चीज वस्तुएँ, रीति-रिवाज आदि भिन्न-भिन्न होने से अनुवाद में समस्या खड़ी करती हैं । जैसे - जलेबी, रबड़ी, रायता, ढोकड़ा, ढ़ोकडी, हप्पा, इमर्ती, फूलवड़ी, पराँठा, (गुजराती में भी पराँठे के कई प्रकार हैं) यथा - चौपड़ा, थेपला, भाखरी, खाखरा आदि) आदि शब्दों का अंग्रेजी या अन्य पाश्चात्य भाषाओं में अनुवाद नहीं हो सकता । इसी तरह सैंडविच, पित्जा, बर्गर, चाऊमीन, ब्रेड आदि का हिन्दी या भारतीय भाषाओं में अनुवाद नहीं किया जा सकता । साथ ही त्यौहार, उत्सव, जलवायु, इतिहास, पशु-पक्षी आदि पर आधारित शब्द, पुराण, पौराणिक कथा, पुरावृत्त (मिथ) पर आधारित शब्द अपनी विशिष्टता लिए हुए होते हैं । जाति विशेष की विशिष्ट शब्दावली बन जाती है । मछुआ, भील, नट, सपेरा, बन्जारा, लकड़हारा आदि का अनुवाद नहीं हो सकता ।[1]

अनेक शब्द ऐसे होते हैं जिनको प्रायः पर्याय समझ लिया जाता है । साहित्य की रचना में प्रयुक्त शब्द की मूल आत्मा को पहचान कर अनुकूल शब्द का प्रयोग अनुवाद में किया जाना चाहिए । आदर्श पर्यायवाची शब्द मिलना प्रत्येक भाषा में मुश्किल है । व्यवहार में इन पर्यायों में निकटता तो

1. अनुवाद कला : सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ.25

होती है परन्तु अर्थ की दृष्टि से समानता कम होती है । जैसे - कोमल, मृदु, मृदुल, मुलायम, नाजुक, नर्म आदि सभी का भाव एक समान होते हुए भी प्रयोग में अर्थ - भिन्नता दिखाई दे जाती है । प्रखर, तीक्ष्ण, तेज, कुशाग्र बुद्धि के रूप में हिन्दी में मिलते हैं । दुःख, दर्द, विषाद, शोक, कष्ट, पीड़ा, क्लेश, यातना, वेदना, व्यथा, यंत्रणा आदि का जितना स्पष्ट अर्थ हिन्दी में है शायद अन्य किसी भाषा में न हो ।[1]

अतः स्पष्ट है कि प्रत्येक भाषा के शब्द अपना स्वतंत्र अर्थ लिए हुए रहते हैं, भाव लिए हुए रहते हैं । अपनी स्वतंत्र संकल्पना लिए हुए होते हैं । इनका अन्य भाषा में प्रतिशब्द हमेशा मिल ही जाता है ऐसा नहीं होता, और अनुवादक के समक्ष समस्या पैदा हो जाती है । ध्वनिमूलक शब्द, ध्वनिपरक अलंकार, बहुअर्थी शब्द आदि के कारण अनुवाद में कठिनाइयाँ आती हैं जिनको अनुवाद में सावधानीपूर्वक उतारना चाहिए । इस प्रकार की समस्या में निकटतम पर्याय लक्ष्य भाषा में न मिले तो भावानुवाद कर देना ही उचित है ।

8.2.3 हिन्दी वाक्य रचना और अनुवाद :

भाषा की अभिव्यक्ति का सशक्त, साधन वाक्य है । वाक्य एक शब्द से लेकर असंख्य शब्दों तक का हो सकता है । वाक्य में आनेवाले शब्द का सर्वप्रथम सार्थक होना परमावश्यक है । अर्थात् सार्थक पद ही वाक्य की रचना में समर्थ हो सकते हैं ।[2]

जो शब्द समूह किसी विचार को पूर्णरूप से व्यक्त करता है उसे वाक्य कहते हैं । भाषा का निर्माण वाक्य ही करते हैं । वाक्य में अकांक्षा, आसक्ति और योग्यता जैसे तत्त्वों का समुचित समाहार होता है ।

संरचना की दृष्टि से वाक्य दो प्रकार - पूर्ण वाक्य और अपूर्ण, वाक्य के होते हैं । जिसमें पूर्ण वाक्य के तीन प्रकार होते हैं : सरल वाक्य, मिंश्र वाक्य और संयुक्त वाक्य ।

पूर्ण वाक्य :

पूर्ण वाक्य अभिव्यक्ति का वह व्यावहारिक रूप है, जिसमें संरचना के घटक उद्देश्य और विधेय का स्पष्ट कथन हुआ हो । जैसे - मनु गया । रामु आया ।

---

1. अनुवाद कला : सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ.26
2. हिन्दी व्याकरण, मनीषा शर्मा, आदित्य, पृ.95

अपूर्ण वाक्य :

अपूर्ण वाक्य अभिव्यक्ति का वह व्यावहारिक रूप है जिसमें संरचना के दो अनिवार्य घटकों में से किसी एक का लोप होता है परन्तु उसका बोध अनुमान या संदर्भ से हो जाता है । जैसे - हटो, चलो, आइए । प्रश्नोत्तरमूलक वार्तालाप में अधिकांशतः लुप्त अंशों का अनुमान संदर्भ के आधार पर कर लिया जाता है । जैसे

मोहन - क्या लेकर आए हो ?

राकेश - हलुआ ।

पूर्ण वाक्य के तीन प्रकार :

सरल वाक्य :

जिस वाक्य में एक ही क्रिया हो, कर्ता चाहे एक से अधिक हों उसे सरल (साधारण) वाक्य कहते हैं । जैसे - माँ खाना बना रही है । (एक क्रिया, एक कर्ता) मोहन और राकेश खेल रहे हैं । (एक क्रिया, दो कर्ता)

मिश्र वाक्य :

जिस वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य है और उसके आश्रित एक या अधिक उपवाक्य हों उसे मिश्र वाक्य कहते हैं । जैसे -

मोहन ने कहा कि राकेश चोर है ।

मोहन पहले ही जानता था राकेश चोर है । आदि

संयुक्त वाक्य :

जिस वाक्य में सभी उपवाक्य समस्तरीय हों अर्थात् जिसमें एक से अधिक स्वतंत्र सरलवाक्यों को किसी संयोजक द्वारा जोड़ा गया हो उसे संयुक्त वाक्य कहते हैं । जैसे -

शमा जलती रही और रात ढलती रही ।

अक्रम गेंद कर रहा है और कपिल खेल रहा है ।

संयुक्त वाक्य में प्रयुक्त सरल वाक्यों का स्वतंत्र प्रयोग हो सकता है । इसमें प्रयुक्त सरल वाक्य एक दूसरे पर आश्रित न होकर पूरक होते हैं परन्तु परस्पर संबंधित होते हैं । जैसे -

मोहन बम्बई से आ रहा है और राकेश दिल्ली से आ रहा है ।

अनुवाद के संदर्भ में कहें तो सभी भाषाएँ वाक्यों से ही बनती हैं । एक भाषा के सार्थक वाक्य को अन्य भाषा के वाक्य में सार्थक (वही अर्थ)

परिवर्तित करना अनुवाद है । विभिन्न भाषाओं का शैलीपरक व्यतिरेक मुख्यत: वाक्य संरचना में प्रतिफलित होता है अत: अनुवाद में वाक्य रचना, शैली का प्रमुख घटक बन जाती है । पदबंध स्तर पर सर्वप्रथम समस्या खड़ी हो जाती है जैसे - चलता क्रिया से -

पेट चलना, घड़ी चलना, कलम चलना, साइकिल चलना, काम चलना, खेल चलना आदि का अनुवाद अंग्रेजी में walking या गुजराती के चालवुं से नहीं हो सकता । इसी तरह हवा खाना, मार खाना, ठंड खाना, दिमाग खाना, चक्कर खाना, खाना खाना, पैसे खाना (रिश्वत खाना) आदि का अनुवाद Eating शब्द से नहीं हो सकता । इस प्रकार के पदबंधों का लक्ष्य भाषा की पदबंध रचना के आधार अनुवाद करना अधिक उपयुक्त होगा। ये पदबंध अधिकांशत: मुहावरों में प्रयुक्त होते हैं अत: लक्ष्यभाषा के मुहावरों या ऐसी अभिव्यक्ति को ढूँढकर अनुवाद में उतारना चाहिए ।

शब्दक्रम की भिन्नता भी अनुवाद में समस्या का कारण बनती है । अलग-अलग भाषाओं के शब्दक्रम भिन्न-भिन्न हो सकते है । हिन्दी भाषा के वाक्य का शब्दक्रम - कर्ता-कर्म-क्रिया है जबकि अंग्रेजी आदि भाषाओं का शब्दक्रम कर्ता-क्रिया-कर्म है ।

Mohan is playing cricket.

कर्ता क्रिया कर्म

मोहन क्रिकेट खेल रहा है ।

कर्ता कर्म क्रिया

अत: अनुवाद करते समय लक्ष्य भाषा के शब्दक्रम का ध्यान रखना होता है । यदि शब्दक्रम उलट पलट गया तो शैली ही बदल जाएगी । जैसे -

मोहन खेल रहा है क्रिकेट ।

क्रिकेट, मोहन खेल रहा है ।

खेल रहा है मोहन क्रिकेट । आदि ।

भारतीय भाषाओं में सहायक क्रिया भी अंत में होती है जबकि यूरोपीय भाषाओं में अंत में नहीं होती । भारतीय भाषाओं की प्रकृति सरल एवं छोटे-छोटे वाक्यों की है जबकि यूरोपीय भाषाओं की प्रकृति बड़े-बड़े मिश्र और संयुक्त वाक्यों की है ।[1] अत: सीधे-सरल और छोटे वाक्यों को जटिल,

1. अनुवाद : सिद्धान्त एवं प्रयोग, डॉ. जी. गोपीनाथन, पृ.100

संयुक्त और मिश्र वाक्यों में बदलना कठिन होता है । अतः लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुसार वाक्यों की रचना करना अधिक उचित है ।

अंग्रेजी भाषा में विशेषण उपवाक्यों में उपवाक्य सूचक सर्वनाम को कर्ता के बाद में रखा जाता है जबकि हिन्दी में कर्ता से पहले ।[1] जैसे -

The pen that she selected was not good.

जो कलम उस लड़की ने चुनी, वह अच्छी नहीं थी ।

डॉ. राम गोपाल सिंह के अनुसार "संज्ञा उपवाक्य, विशेषण उपवाक्य तथा क्रिया विशेषण उपवाक्यों पर अंग्रेजी के उपवाक्यों का प्रभाव है लेकिन हिन्दी ने इस प्रभाव को अपनी वाक्य रचना एवं सहजगति में रचा-पचा लिया है ।[2] साथ ही अंग्रेजी की संयुक्त वाक्य रचना (व्यवस्था) का हिन्दी की संयुक्त वाक्य व्यवस्था पर काफ़ी प्रभाव पड़ा है । अंग्रेजी वाक्य रचना के प्रभाववश संकुचित संयुक्त वाक्यों का प्रयोग शुरु हुआ है तो संयुक्त वाक्य व्यवस्था का आवश्यक और महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है । अंग्रेजी के संयुक्त या मिश्र वाक्यों का हिन्दी में विभिन्न छोटे-छोटे वाक्यों, सरल वाक्यों में अनुवाद किया जाए तो वह आदर्श के निकटतम होगा । अंग्रेजी के एक वाक्य :

It is impossible to solve this problem.

इस वाक्य के हिन्दी अनुवाद -

इस समस्या को हल करना कठिन है ।

इस समस्या को हल नहीं किया जा सकता ।

यह समस्या हल नहीं हो सकती । आदि । अंग्रेजी के इस वाक्य के शैलीपरक अनेक अनुवाद हो सकते हैं । श्री अशोक वर्मा ने इसी वाक्य के 150 हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किए हैं ।[3]

इस प्रकार वाक्य स्तर पर अनुवाद करते समय आनेवाली समस्याओं का समाधान लक्ष्य भाषा की वाक्य संरचना, प्रकृति, शब्दों के उचित चयन आदि के अनुरूप करना चाहिए । इससे शब्द स्तरीय समस्याओं से बचा जा सकता है ।

---

1. अनुवाद : सिद्धान्त एवं प्रयोग, डॉ. जी. गोपीनाथन, पृ.101
2. हिन्दी वाक्य रचना पर अंग्रेजी का प्रभाव, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.140
3. अनुवाद भारती, अंक 34-35 जुलाई-दिसम्बर 2003 में प्रकाशित अशोक वर्मा का लेख 'हिन्दी भाषा की अभिव्यक्ति सामर्थ्य', पृ.48-49

8.3 लिप्यंन्तरण और अनुवाद :

भाषाएँ लिपियों में लिखी जाती हैं । एक भाषा की लिपि दूसरी भाषा की लिपि से भिन्न भी हो सकती है, अतः एक भाषा की लिपि को दूसरी भाषा की लिपि में लिखना लिप्यन्तरण कहलाता है । डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया लिखते हैं कि "लिप्यंतरण से तात्पर्य है - 'लिपि का अन्तरण' । इसके लिए संस्कृत में 'लिप्यंतरण' शब्द का प्रयोग किया जाता था । एक भाषा की लिपि से दूसरी लिपि में लिखा जाना ही लिप्यंतरण है ।"[1] डॉ. राम गोपाल सिंह के अनुसार अनुवाद में भाषा बदलती है, वहाँ लिप्यंतरण में लिपि ।[2] डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार "लिप्यंतरण - अर्थात् एक भाषा की वर्तनी में प्रयुक्त अक्षरों के स्थान पर अन्य भाषा में प्राप्त समध्वनीय अक्षरों का प्रयोग करना ।"[3]

लिप्यन्तरण के लिए अंग्रेजी शब्द 'Transliteration' है । डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार लिप्यंतरण अर्थात् लिप्यन्तर, वर्णान्तर है ।[4] श्री अवधेशमोहन गुप्त ने 'प्रारंभिक अनुवाद विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग (पृ.50) में 'Transliteration' के लिए लिप्यान्तरण शब्द का प्रयोग किया है ।

भाषा विज्ञान कोश में डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिप्यन्तरण की परिभाषा देते हुए लिखा है "किसी रचना या सामग्री को एक लिपि से दूसरी में करना लिप्यंतरण है ।"[5] द न्यू एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका जिल्द-10, संस्करण-15 के अनुसार किसी भाषा के स्वनों, शब्दों या उच्चारणों की दूसरी भाषा की लेखन व्यवस्था में प्रयुक्त प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्ति लिप्यंतरण है ।[6]

एक लिखित भाषा किसी अन्य लिपि को राजकीय, सामाजिक या भाषिक कारणों से अपनाए तो लिप्यंतरण की आवश्यकता पड़ती है । कभी-

---

1. अनुवाद कला : सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ.40
2. अनुवाद भारती, अंक 9 अप्रैल-जून 1997 में प्रकाशित डॉ. राम गोपाल सिंह का लेख 'अनुवाद में लिप्यंतरण और लिप्यंकन' पृ.29
3. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.55
4. बृहत अंग्रेजी हिन्दी कोश, डॉ. हरदेव बाहरी, पृ.1992
5. भाषाविज्ञान कोश, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.576
6. द न्यू एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, जिल्द-10, संस्करण-15 पृ.93

कभी एक भाषा में किसी अन्य भाषा के शब्दों (आगत शब्द, मिश्र आगत शब्द आदि) को लिखते समय, एक भाषा में प्रयुक्त स्थान या व्यक्तियों के नाम आदि को अन्य भाषा की लिपि में लिखते समय, किसी भाषा के उद्धरण को ज्यों का त्यों अन्य भाषा की लिपि में लिखते समय लिप्यंतरण की आवश्यकता पड़ती है ।

डॉ. राम गोपाल सिंह के अनुसार लिप्यंतरण की आवश्यकता मुख्यतः तीन दृष्टियों से होती है : (1) जब कोई लिखित भाषा किसी सामाजिक, राजनीतिक या भाषिक कारणों से किसी दूसरी भाषा की लिपि को अपनाती है। यह स्थिति कई तरह की हो सकती है - (क) किसी सामाजिक या राजनीतिक या दोनों कारणों से कोई भाषा अपनी प्रचलित लिपि के स्थान पर अन्य किसी लिपि को अपना ले; जैसे तुर्की ने अरबी के स्थान पर रोमन लिपि को अपना लिया था । (ख) जब कोई भाषा पर उसकी लिपि किन्हीं कारणोवश अप्रचलित या लुप्तप्राय हो जाती है तो ऐसी स्थिति में पूरी भाषा को अन्य किसी प्रचलित लिपि में लिख लिया जाता है; जैसे - इजिप्शियन, अक्खादियन तथा सुमेरियन शिलालेखों को उनकी लिपि का अर्थ समझने के लिए रोमन लिपि में लिखा गया । (ग) द्वितीय भाषा शिक्षा में छात्रों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए लक्ष्य भाषा को छात्रों की सीखी हुई लिपि में लिप्यंतरित कर दिया जाता है; जैसे - अंग्रेजी भाषियों को हिन्दी सिखाने के लिए आरंभ में रोमन लिपि का इसी आवश्यकतावश प्रयोग किया जाता था । जब संस्कृत भाषा की ओर यूरोप का ध्यान आकृष्ट हुआ तो वहाँ के लोगों ने संस्कृत का अध्ययन रोमन लिपि में लिप्यंतरित करने के बाद किया । (घ) तुलनात्मक और व्यतिरेकी अध्ययन के लिए अनुसंधान-कर्ता लक्ष्य भाषा को अपनी सीखी हुई लिपि में अंतरित करके शोधकार्य की ओर प्रवृत्त होता है । (3) इसीतरह आगत शब्दों, आगत मिश्र शब्दों आदि को अपनी लिपि में लिखने के लिए अनुवाद में लिप्यंतरण का प्रयोग बहुतायत से किया जाता है ।[1]

प्रत्येक भाषा लिपि के माध्यम से ही लिखी जाती है । कभी-कभी

---

1. अनुवाद भारती, अंक 9 अप्रैल-जून 1997 में प्रकाशित डॉ. राम गोपाल सिंह का लेख 'अनुवाद में लिप्यंतरण और लिप्यंकन' पृ.29

ऐसा भी पाया जाता है कि एक ही लिपि कई भाषाओं का प्रतिनिधित्व करती है; जैसे - संस्कृत, हिन्दी, मराठी, नेपाली ये चार भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं तथा इंग्लिश, फ्रेंच, जर्मन, इतालियन आदि रोमन लिपि में लिखी जाती हैं । इस स्थिति में अर्थात् एक ही लिपि वाली एकाधिक भाषाओं में परस्पर अनुवाद करने पर भाषा बदलेगी लिपि नहीं ।

एक से अधिक भाषाओं में प्रयुक्त एक ही लिपि के वर्णों के स्वनात्मक मूल्य कभी-कभी भिन्न होते हैं यथा - संस्कृत में-ज्ञ (ज्+ञ), हिन्दी में-ज्ञ (ग् +य), मराठी-ज्ञ (द्+य) । एक ही लिपि वाली भाषाओं में से कोई एक भाषा प्रभाववश तथा विकासक्रम में भी कई ध्वनियाँ ग्रहण कर लेती हैं; तथा लिपि के स्तर पर ऐसी ध्वनियों के लिए लिपिचिह्न भी जुड़ जाते हैं; जबकि सामान्य लिपिवाली दूसरी भाषा में वह स्थिति नहीं आती । जैसे - हिन्दी में आज विदेशी भाषाओं के प्रभाव से क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ऑ आदि कई लिपि चिह्न शामिल किए हैं । लिप्यन्तरण के संदर्भ में प्रत्येक भाषा की रचनात्मक व्यवस्था को भाषा विशेष के साथ रखकर चलना अधिक उचित होगा; यथा - देवनागरी हिन्दी, देवनागरी मराठी, देवनागरी संस्कृत, देवनागरी नेपाली, रोमन इंग्लिश, रोमन फ्रेंच, रोमन जर्मन, रोमन इतालियन आदि ।[1]

फ़ारसी भाषा आर्य परिवार की भाषा है जबकि अरबी सामी (समेंटिक) परिवार की है । अरबी वर्णमाला में ही कुछ नवीन वर्णों का समावेश कर फ़ारसी वर्णमाला की सृष्टि हुई । इसी कारण से 'अरबी-फ़ारसी' शब्दावली संयुक्त नाम प्रचलित हो गया ।[2]

प्रशासनिक तथा अदालती हिन्दी में तो अरबी-फ़ारसी के अनेक शब्द प्रयुक्त होते हैं । शेर-शायरी तथा उर्दू की कहानियाँ जब से नागरी लिपि में प्रकाशित होने लगी तब से अरबी-फ़ारसी की शब्दावली का नागरी में लिप्यंकन बड़ी व्यवस्था से किया जाने लगा ।

हिन्दी और अंग्रेजी में जो स्वर समान हैं उनके लिप्यंतरण में कोई समस्या पैदा नहीं होती । जैसे इ - किड्स, रिस्पोन्स, विक्टोरिया आदि ।

1. अनुवाद भारती, अंक 9 अप्रैल-जून 1997 में प्रकाशित डॉ. राम गोपाल सिंह का लेख 'अनुवाद में लिप्यंतरण और लिप्यंकन' पृ.30
2. अनुवाद कला : सिद्धान्त और प्रयोग, कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ.41

हिन्दी की प्रकृति के अनुसार अधिकांशतः अन्त्य स्थिति में दीर्घ 'ई' का ही प्रयोग होता है । जैसे -

ई - रेफ़री, बैटरी, रोटरी, लोटरी आदि ।

उ - फुट, बुक, सुगर आदि ।

ऊ - फूल, हूल, कूल, शू, ज्यूस आदि ।

आ - पार्ट, पास, फ़ास्ट, लास्ट, माइकर आदि ।

इसी प्रकार अंत्य स्थिति में हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुसार दीर्घ 'आ' उच्चरित होता है अतः लिप्यंतरण में भी दीर्घ 'आ' लिखा जाता है जैसे - कोमा, एजेन्डा, ड्रामा आदि । हिन्दी में अंग्रेजी के विशिष्ट 'ॲ' और 'ऑ' प्रायः प्रत्येक ही में समाहित हो जाते हैं । अर्थात् 'अ' और 'ॲ' तथा 'आ' और 'ऑ' एक में ही समाहित हो जाते हैं परन्तु लिप्यंतरण हेतु 'ॲ' और 'ऑ' दो नए स्वर हिन्दी में और बढ़ा लिए हैं । संध्यक्षर स्वरों की अनुपस्थिति के कारण ऍइ, ऑउ, आइ, आउ, इअ, ऍअ, ॲअ, उस आदि को शुद्ध स्वरों या स्वर संयोग में बदल दिया जाता है और उसी तरह लिप्यंतरण भी हो जाता है जैसे -

ऍइ - Late, Rail, Mail, Jail - लेट, रेल, मेल, जेल

ऑउ - Coat, Boat, Vote - कोट, बोट, वोट

आइ - Line, Time, Guide - लाइन, टाइम, गाइड

आउ - House, Mouse, Out, Town - हाउस, माउस, आउट, टाउन

इअ - Tear, Dear, Fear, Bear - टिअर, डिअर, फिअर, बिअर

ऍअ - Share, Chair - शॅअर, चेअर (शॅयर, चेयर)

ऑअ - Store, Board - स्टोर, बोर्ड

उअ - Tour, Poor - टुअर (टूर अधिक प्रचलित है), पुअर

अंग्रेजी में 'व' तथा 'व़' दो प्रकार के व्यंजन हैं । हिन्दी में भी 'व' का उच्चारण कुछ परिस्थितियों में 'व़' की तरह होता है परन्तु उसका लिप्यंतरण तो 'व' ही रखा जाता है । जैसे

दिव्य, आवास में 'व' का उच्चारण व़ है

देवा, वामन में व का उच्चारण व है ।

अंग्रेजी में स्पष्ट तथा अस्पष्ट दो प्रकार के 'ल' हैं जिनको लिप्यन्तरण में एक ही रूप दे दिया जाता है । आक्षरिक 'ल' को भी बदलकर 'अल' या 'इल' में बदल लेते हैं ।[1] जैसे -

---

1. अनुवाद कला : सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ.45

Petrol, Leader - पेट्रोल, लीडर

Bottle, Little, Bittle - बोतल, लिटल, बिरल

Cycle - साइकिल

इसके अलावा हिन्दी में कुछ असमान व्यंजन भी हैं जैसे - क - क़, ख - ख़, ग - ग़, ज - ज़, फ - फ़ ।

अरबी-फ़ारसी के माध्यम से आए अनेक शब्दों के माध्यम से इनका प्रचलन पहले से ही हो गया था ।

क - क़ : क = कमर - शरीर का एक हिस्सा

क़ = क़मर - चाँद (क की सघोष ध्वनि)

ख - ख़ : खाजा - खाना (क्रिया) - खा कर जा

ख़ाजा - एक व्यंजन का नाम (वानगी का नाम)

ग - ग़ : गम - चिपकाने का गोंद

ग़म - दु:ख, पीड़ा (ग की सघोष ध्वनि)

इसी तरह ज की सघोष ध्वनि ज़, फ की सघोष ध्वनि फ़ है ।

डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया के अनुसार - "साधारणत: लिप्यंतरण वर्तनी के आधार पर ही किया जाता है । यदि किसी शब्द का उच्चारण के आधार पर लिप्यंतरण किया जाएगा तो वही 'ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन' हो जाएगा । अंग्रेजी में शब्दों की वर्तनी और उसके उच्चारण में बहुत फर्क है । ऐसी स्थिति में वर्तनी से यदि लिप्यन्तरण किया जाए तो उसका जो रूप बनेगा वह अधिकांशत: अनर्थ रूप बनेगा ।"[1]

अत: कहा जा सकता है कि किसी एक भाषा की रचना की लिपि को दूसरी भाषा की रचना-प्रकृति के अनुरूप लिपि बद्ध करना लिप्यंतरण है । अनुवाद करते समय लिप्यन्तरण के कारण आनेवाली समस्या से बचने के लिए लक्ष्य भाषा की ध्वनि और वर्तनी के अनुसार लिप्यन्तरण आदर्श के निकटतम हो सकेगा ।

8.4 लिप्यन्कन और अनुवाद :

लिप्यन्कन शब्द का अंग्रेजी प्रतिशब्द 'Transcription' है । लिप्यन्कन और लिव्यन्तरण शब्दों के बीच शाब्दिक पर्यायता की दृष्टि से शब्दकोश कोई सूक्ष्म रेखा नहीं खींचते । प्रो. महेन्द्र चतुर्वेदी और डॉ. भोलानाथ तिवारी के

---

1. अनुवाद कला : सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ.46

द्वारा संपादित 'व्यावहारिक हिन्दी-अंग्रेजी कोश' में लिप्यन्तरण शब्द के अंग्रेजी पर्याय के रूप में 'Transliteration' और 'Transcription' दोनों शब्द दिए हैं ।[1] डॉ. भोलानाथ तिवारी ने 'Transcription' के लिए 'प्रतिलेखन' शब्द का प्रयोग किया है ।[2] श्री अवधेश मोहन गुप्त ने 'Transcription' के लिए 'लिप्यांकन' या 'ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन' शब्द का प्रयोग किया है ।[3]

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार "प्रतिलेखन लिप्यंकन अर्थात् स्रोत भाषा के शब्द की वर्तनी पर ध्यान न देकर उसके उच्चारण को आधार मानकर लक्ष्य भाषा में उस उच्चारण के अनुरूप लिखना ।"[4]

डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया का मानना है कि "वर्तनी से अंकन किया जाने लगे तो जो रूप बनेगा उसका कोई अर्थ अधिकांशतः नहीं निकाल सकेगा। फिर स्वरों की वर्तनी तथा उच्चारण में किसी प्रकार का तारतम्य न होने के कारण यह रूप और भी हास्यास्पद बन जाएँगे ।"[5]

डॉ. राम गोपाल सिंह स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "लिप्यन्तरण और लिव्यंकन को अनुवाद के संदर्भ में कई बार एक ही अवधारणा के रूप में समझने का भ्रम हो जाता है । अनुवाद में लिप्यंकन उच्चारण को आधार मानकर किया जाता है । लिप्यंकन ध्वन्यात्मक और स्वनिमात्मक - दो प्रकार का हो सकता है । यदि स्रोत भाषा की वर्तनी और उच्चारण में काफी अंतर है तो लिप्यंकन उच्चारण को आधार बनाकर किया जाता है ।"[6]

प्रत्येक भाषा के अपने स्वर और व्यंजन होते हैं तथा उनका उच्चारण भी उस कथित भाषा का अपना ही होता है । जैसे अंग्रेजी में क, प, ट आदि

---

1. व्यावहारिक हिन्दी-अंग्रेजी कोश, प्रो.महेन्द्र चतुर्वेदी, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.676
2. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.55
3. प्रारंभिक अनुवाद विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग, अवधेश मोहन गुप्त, पृ.50
4. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.55
5. अनुवाद कला : सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ.46
6. अनुवाद भारती, अंक 9, अप्रैल-जून 1997 में प्रकाशित डॉ. राम गोपाल सिंह का लेख 'अनुवाद में लिप्यन्तरण और लिप्यन्कन' पृ.30

के व्यंजनों के उच्चारण हिन्दी के क, प, ट आदि के उच्चारणों के समान नहीं है । अंग्रेजी में इनके उच्चारणों में महाप्राणत्त्व भी आता है । अंग्रेजी में स्पष्ट और अस्पष्ट दो प्रकार के ल हैं । अंग्रेजी के 'कोट' के 'क' में 'ऑउ' स्वर है जबकि हिन्दी में 'ओ' ही है । अंग्रेजी में 'Ghost' का उच्चारण 'घोस्ट' किया जाता है जो कि वर्ण-वर्तनी के कारण प्रचलित हुआ है जबकि अंग्रेजी में यह ध्वनि है ही नहीं । अंग्रेजी में ही 'Vitamin' के लिए 'विटेमिन' या 'विटामिन' उच्चारण किया जाता है जबकि शुद्ध रूप 'वाइटेमिन' है । इसी तरह अंग्रेजी 'डज़न' की वर्तनी में कहीं भी 'R' नहीं है न ही उच्चारण में फिर भी इसका हिन्दी में 'दर्जन' किस तरह हुआ ।

इस प्रकार लिप्यंकन स्रोत भाषा की वर्तनी और उच्चारण के अनुरूप लक्ष्य भाषा की लिपि में लिखा जाता है, जबकि लिप्यंतरण में लक्ष्य भाषा की वर्तनी, प्रकृति और उच्चारणों को ध्यान में रखकर स्रोत भाषा के उच्चारणों को लिखा जाता है । उदाहरणार्थ -

Father का लिप्यंतरण - फ़ादर

Father का लिप्यंकन - फ़ादः

Coat का लिप्यंतरण - कोट

Coat का लिप्यंकन - कोउट ('क' महाप्राण ध्वनि)

Parcel का लिप्यंतरण - पार्सल

Parcel का लिप्यंकन - पासॅल ('प' महाप्राण ध्वनि)

अतः लिप्यंतरण और लिप्यंकन दोनों का आधार उच्चारण है अतः अनुवादक लिप्यंकन करेगा तो वह आदर्श के अधिक निकट पहुँच सकता है ।

8.5 साहित्यिक भाषा और अनुवाद :

जन हित की भावना साहित्य में प्रबल रहती है । इसमें 'सम्मिलित' या 'सहित' भाव का अपना विशेष महत्व है । डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं कि "साहित्यस्य भावः साहित्यम् अर्थात् शब्द और अर्थ के संहित-भाव (परस्पर सान्निध्य) को साहित्य कहते हैं । अथवा इसमें शब्द और अर्थ दो सुहृदों के समान एक-दूसरे की शोभा को बढ़ाए हुए, एक दूसरे के हित में लगे रहते हैं ।"[1] श्री बी.एम. बर्धन का कहना है कि "एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ हायर एजुकेशन" में साहित्य की पारंपरिक व्याख्या इस प्रकार की गई है कि वह

---

1. भारतीय साहित्य कोश, सं.डॉ. नगेन्द्र, पृ.1343

मानव जीवन का दर्पण है या मानव अनुभव से संबंधित सिद्धान्तों और आदर्शों का संग्रह है । इसमें लेखक विशेष के सकल सृजन के कथ्य, विचारों और भावनाओं पर तथा साथ ही उसके एकनिष्ठ कार्य पर बल दिया गया है ।"[1]

जीवन के सभी पहलुओं से संबंधित विविध भावों का संगम अर्थात् साहित्य । साहित्य मानव मन से स्फुरित होता है । आरंभ से परिपक्वता की स्थिति तक क्रमिक रूप से आकार ग्रहण करता है और फलता-फूलता है एवं निरंतर नवीन आयामों को उद्घाटित करता है । "साहित्यिक अनुवाद की प्राचीनतम पश्चिमी परंपरा में ईसवी सन के आरम्भ से 200 से 300 वर्ष पूर्व यूनानी भाषा में हुए बाइबिल के अनुवादों को माना जाता है । ईसा पूर्व तीसरी, दूसरी सदी में हिब्रु से यूनानी भाषा में ओल्ड टेस्टामन्ट के अनुवाद सेप्तुआंगित का 72 अनुवादकों द्वारा 72 दिन में अनुवाद किए जाने का उल्लेख मिलता है ।"[2]

समग्र ज्ञान के संचय को साहित्य कहा जा सकता है । इस आधार पर साहित्य में वस्तुओं के सामान्य परिचय से लेकर सूक्ष्म ज्ञान की समस्त उपलब्धियाँ समाहित हैं । रचनात्मक साहित्य में ललित साहित्य और शक्ति साहित्य का समावेश किया गया है । अत: रचनात्मक साहित्य से अभिप्राय उस समस्त ललित और शक्ति साहित्य से होता है जिसमें महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक काव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज, आत्मकथा, जीवनी, यात्रावर्णन तथा अन्य समस्त शक्ति साहित्य का समावेश होता है ।

8.5.1 कविता और अनुवाद :

समग्र साहित्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है (1) रसात्मक साहित्य (शक्ति साहित्य) और ज्ञानात्मक साहित्य । कविता, रसात्मक साहित्य का नवनीत है । वस्तुत: रसात्मक साहित्य भाव एवं कल्पना पर आधारित एक सृजनात्मक प्रक्रिया है । इसमें विचार और तथ्य मूर्त रूप में नहीं होते बल्कि भाव और कल्पना सूक्ष्म और तरल रूप में होते हैं ।

---

1. अनुवाद अंक 43, अप्रैल-जून 1985 में प्रकाशित बी.एम.वर्धन के लेख का निशि चड्ढा द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद 'साहित्यिक अनुवाद की कठिन पगडंडियाँ' पृ.97
2. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.76

अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि विलियम वर्ड्सवर्थ के अनुसार - Poetry is spontaneous overflow of powerful feelings, it takes its origin from emotions recollected in tranquility- अर्थात् कविता शांति के क्षणों में स्मरण की गई तीव्र अनुभूतियों का स्वतः स्फूर्त प्रवाह है जिनका मूल उत्स भाव-जगत है । हडसन के अनुसार - Poetry is interpretation of life through imagination and emotion - अर्थात् कविता कल्पना एवं भाव के माध्यम से जीवन की व्याख्या है । जॉनसन के अनुसार Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason - अर्थात् कविता सत्य और आनन्द ने सम्मिश्रण की कला है जिसमें बुद्धि की सहायता के लिए कल्पना का प्रयोग किया जाता है ।[1] रसात्मकं वाक्यं काव्यं ।

कविता का अनुवाद हमेशा विवाद का विषय रहा है । कुछ विद्वानों का मानना है कि कविता का अनुवाद नहीं हो सकता और कुछ विद्वान कहते हैं क कविता का अनुवाद संभव है । परन्तु इस वादविवाद के होते हुए भी कविता के अनुवाद हुए हैं और आज भी हो रहे हैं । प्रमुखतः कविता के अनुवाद को ही दृष्टि में रखकर विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं :[2]

1. Traduttori traditori.(अनुवादक वंचक होते हैं ।)- एक इतालवी कहावत
2. Translation is medding with inspiration. - Showerman
3. Idear can be translated but not the words and their associations. - Sydney.
4. All translation seems to me simply an attempt to solve an unsolvable problem. - Humboldt
5. There is no such thing as translation. - May

डॉ. भोलनाथ तिवारी का मानना है कि "कविता का अनुवाद करना बहुत कठिन तो है परन्तु वह असंभव है यह नहीं कहा जा सकता । विश्व में अब तक कई हजार कविताओं के अनुवाद हुए हैं । इन अनुवादों को एकदम अनधिकृत या अग्राह्य मानकर अस्वीकार नहीं कर सकते ।"[3]

---

1. अनुवाद अंक 108, जुलाई-सितंबर 2001 में प्रकाशित डॉ. कुसुम अग्रवाल का लेख 'सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद : काव्यानुवाद के संदर्भ में' पृ.12
2. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.131
3. वहीं, पृ.132

भारतीय संदर्भ में काव्यानुवाद का विभाजन दो दृष्टियों -

(1) भाषा की दृष्टि से: (क) भारतीय भाषाओं में परस्पर, (ख) प्राचीन भाषा से आधुनिक भाषा में, (ग) विदेशी भाषा से किसी भारतीय भाषा में ।

(2) रूप की दृष्टि से : (क) पद्य का गद्य में (ख) पद्य का पद्य में - मूल छंद में, लक्ष्यभाषा के छंद में, मुक्त छंद में विभाजित किया जा सकता है ।

रूसी विद्वान लोटमैन के अनुसार काव्यानुवाद मुख्यतः चार प्रकार का होता है :

1. विषय प्रधान :

इस प्रकार के अनुवाद का मुख्य लक्ष्य स्रोत भाषा के काव्य की विषयवस्तु को लक्ष्यभाषा में उतारना होता है ।

2. संरचनात्मक :

इस प्रकार के अनुवाद में कविता की संरचना पर ध्यान दिया जाता है और मूल संरचनात्मक रचना के आधार पर अनुवाद किया जाता है ।

3. भाषिक प्रधान :

इस प्रकार के अनुवाद में छन्द, शब्द चमत्कार, अलंकारों आदि की भाषिक विशेषता आदि को अनुवाद में उतारा जाता है ।

4. साहित्येतर प्रधान :

इस प्रकार के काव्यानुवाद में काव्य-संदर्भ की अपेक्षा साहित्येतर संदेश अर्थात् मूल कविता के धार्मिक, सामाजिक, वैज्ञानिक तत्त्वों को अनुवाद में उतारा जाता है ।

कविता का अनुवाद अन्य विषयों की तुलना में अधिक श्रमसाध्य होता है । रोबर्ट फ्रास्ट का कहना है कि "जब कविता का अनुवाद करते हैं तो कविता खो जाती है । कविता का भाव तो थोड़ा बहुत जोड़ने-घटाने से लगभग आ जाता है किन्तु उसका कवित्त्व नष्ट हो जाता है ।"[1] डॉ. भोलानाथ तिवारी का कहना है कि "कविता का अनुवाद यथासंभव निकटतम समतुल्य होता है, ठीक मूल नहीं ही होता - न ही हो सकता है और न ही किया जा सकता है । किसी भी रचना का अनुवाद सरल नहीं होता, परन्तु कविता का

---

1. अनुवाद भारती, अंक 14-15, जुलाई-दिसंबर 1998 में प्रकाशित डॉ. मायाप्रकाश पांडेय का लेख - 'काव्यानुवाद की सार्थकता' पृ.20

इसलिए और भी कठिन होता है कि कई बातों में कविता अन्य रचनाओं से अलग होती है । इसमें कुछ तत्त्व ऐसे होते हैं जो अन्य में नहीं होते और जिन्हें अनुवाद में ला पाना कठिन होता है ।"[1]

कविता के अनुवाद में कविता की संवेदना सबसे अधिक समस्या पैदा करती है । कवि स्वानुभूति का चेतना शक्ति के माध्यम से अपनी मनोसंवेदनाओं का चित्रीकरण कविता में चित्रित करता है । वह कम शब्दों या पंक्तियों में अपने व्यापक भावों को उतारता है । अर्थात् व्यापक संवेदनाओं को वह गिने-चुने शब्दों में बाँधता है जो कि बड़ा ही दुष्कर कार्य होता है । कवि कविता की रचना करते समय अपनी संवेदनाओं को बड़ी ही बख़ूबी से अभिव्यक्त करता है । अनुवादक के मन में मूल संवेदनाओं का केवल असर होता है परन्तु वे ही संवेदनाएँ उसके मन में स्थान नहीं ले सकतीं । जैसे -

उमर ख़ैयाम की रूबाई:
आमद सहरे निंदा जे भयख़ान-ए-मा ।
के रिन्द ख़राबाती व दीवान-ए-मा ।
बरख़ेज कि पुरकुनेम पैमाना ज़े मय,
ज़ाँ पेश कि पुरकुनंद पैमान-ए-मा ।

यहाँ कवि का कहना है कि सुबह होते ही मदिरालय से आवाज़ आई कि ऐ पीने वाले व मेरे दीवाने, उठ ! और शराब से अपने प्याले को भर ले। कब्ल इसके कि हमारे शरीर की मिट्टी से बने प्याले भरें अर्थात् हम मर जाएँ। कवि की इस संवेदना को मूलतः अनुवाद में उतारना कठिनतम है ।

ह. श्री साने के अनुसार "कविता के सम्पृक्त रूप को अनूदित करना कई कारणों से मुश्किल होता है । कविता में कुछ जोड़ना-घटाना अर्थात् कविता के कवितापन को घटाना ही सिद्ध होता है । छन्द का बन्धन अन्य समस्या को उभारता है । रचना में, प्रयुक्त मिथकों, प्रतीकों का अनुवाद एक समस्या होती है । इसलिए कविता का अनुवाद कड़ी-दर-कड़ी प्रायः असंभव माना जाता है ।"[2]

कविता के अनुवाद में ताल-लय-तुक की समस्या भी अति गहन है । स्रोत भाषा के ताल, लय, तुक आदि लक्ष्य भाषा में सदैव नहीं मिल पाते और इस कारण समस्या का उद्भव हो जाता है । जैसे -

घनन - घनन घन घिर आए बदरा...

---

1. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.132
2. अनुवाद क्या है ? सं. डॉ. भ.ह. राजूरकर, डॉ. राजमल बोरा, पृ.125

अंग्रेजी या अन्य किसी भाषा में ठीक इस प्रकारका ताल मेल नहीं हो सकता । इसी प्रकार -

अगि गिरि नंदिनीनंदित मेदिनी विश्वविनोदिनी नंदनुते ।
गिरिवर विंद्यसिरोधि निवासिनी विष्णु विलासिनी जिष्णुनुते ।
भगवती हे शिती कंठ कुटुंबिनी भूरीकुटुंबिनी भूरिकृते ।
जयजय हे महिषासुर मर्दिनी रम्यकपर्दिनी शैलसुते ।।

यहाँ संस्कृत की इस रचना में सार्थक ताल, लय और तुक हैं इनका अनुवाद में आ पाना असंभव ही है । कविता अधिकांशत: अलंकृत भाषा में ही गढ़ी जाती है । अत: कविता में अलंकारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि स्रोत भाषा में लिखी गई कविता में प्रयुक्त अलंकार लक्ष्यभाषा में प्राप्त ही न हों । जैसे -

"सत्य सनेह सील सुख सागर" के किसी भी भाषा में अनुवादक को इन शब्दों के लिए ऐसे प्रतिशब्द खोजने होंगे कि जिनमें प्रारंभिक ध्वनि समान हो । स्पष्टत: असंभव है । इसी तरह How high His Highness *holds* his haughty head. का हिन्दी में समान अनुवाद असंभव है । इसी तरह He is wise as an owl. का हिन्दी में अनुवाद - "वह उल्लू की तरह बुद्धिशाली है" करना हास्यास्पद होगा । क्योंकि हिन्दी में 'उल्लू' मूर्खता का प्रतीक है जबकि अंग्रेजी में वह बुद्धिशाली को प्रतीक हैं ।

"वह कामदेव जैसा सुंदर है ।"

हिन्दी में 'कामदेव' प्रेम का देवता है साथ ही अत्यंत सुंदर भी है । जबकि अंग्रेजी में प्रेम का देवता क्युपिड है जो अत्यंत भयावह है ।

"छुई-मुई-सी तुम लगती हो" अंग्रेजी में 'छुई-मुई' शब्द का प्रतिशब्द touch me not mosa या mimosa होता है जो कोमलता के लिए तो नहीं ही प्रयुक्त होता है ।

इसके अलावा कविता में प्रयुक्त सांस्कृतिक शब्दों या सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को अनुवाद में उतारना टेढी खीर है । जैसे हिन्दी में शैतान की आँत, सोने की लंका, अंगद का पैर, भीष्म प्रतीज्ञा, द्रोपदी का चीर, दधीचि की हड्डी, रामबाण आदि ऐसी अभिव्यक्तियाँ हैं जिनका अंग्रेजी में अनुवाद कठिन सिद्ध होता है । इसी तरह अंग्रेजी की Democle's sword, old Adam, Baptism of blood, witch-hunt, one's walterloo आदि भी ऐसी ही अभिव्यक्तियाँ हैं । कुछ वस्तुएँ भी ऐसी होती हैं जिनका अनुवाद करना

बड़ा ही कठिन होता है; जैसे खड़ाऊ, जनेऊ, कुर्ता, धोती, साड़ी, हलवा, कचौड़ी आदि ।

इस प्रकार कविता के अनुवाद में अनुवादक को लक्ष्य भाषा की प्रकृति, ताल, लय, तुक, जानकारी अवश्य होनी चाहिए नहीं तो अनुवाद में त्रुटि रहने की अधिक संभावना होगी । इन समस्याओं से बाहर निकलने के लिए अनुवादक को कविता का अनुवाद करते समय भाव पूर्णतः ग्रहण करके उसका भावानुवाद करना अधिक ठीक होगा । सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों, प्रतीकों आदि को पाद टिप्पणी द्वारा स्पष्ट कर देना उचित होगा ।

8.5.2 कथा साहित्य और अनुवाद :

कथा साहित्य में उपन्यास और कहानी/लघुकथा दोनों प्रकार की रचनाओं का समावेश होता है ।[1] संख्या की दृष्टि से कथा साहित्य अन्य भाषाओं से सर्वाधिक अनूदित होता है । कथा साहित्य को लोग बड़ी रूचि से पढ़ते हैं, इसी कारण प्रतिवर्ष भारतीय भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं से पर्याप्त मात्रा में कथा साहित्य हिन्दी भाषा में अनूदित होता है । बंगला के तो सभी श्रेष्ठ उपन्यास हिन्दी में अनूदित हो चुके हैं । कुछ उपन्यासकारों की माँग तो हिन्दी में बंगला से भी अधिक है ।[2] टॉल्सटॉय, तुर्गनेव, दास्तावस्की, जोला बाल्ज़ाक, टैगोर, प्रेमचन्द आदि कथाकार अनुवाद के माध्यम से ही कथाकार के रूप में विश्वस्तर पर प्रसिद्ध हुए हैं । पंचतंत्र के अनुवाद से पश्चिम ने मौलिक कथा साहित्य लिखना सीखा; ठीक इसी तरह भारत में पश्चिमी उपन्यासों का अनुवाद करते-करते उपन्यास कला विकसित हुई ।[3]

वास्तव में गद्य और पद्य के अनुवाद में भिन्नता है । कविता को उसकी गति, लय, ताल, तुक, व्यंग्यार्थ आदि से अलग करके नहीं समझा जा सकता । गद्य में विचार और वक्तव्यों को पृथक करके लक्ष्य भाषा में साधारणतः उतारा जा सकता है । गद्य के अनुवाद में वाक्य-क्रम में यत्किंचित परिवर्तन करके, जटिल वाक्यों को सरल वाक्य बनाकर संप्रेषणीयता को सरल बनाया जा सकता है । कह सकते हैं कि कविता के अनुवाद की अपेक्षा कथा साहित्य का अनुवाद अधिक सरल है ।[4]

---

1. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.89
2. अनुवाद कला : सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ.116
3. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.90
4. अनुवाद : सिद्धान्त और व्यवहार, डॉ. मंजुला दास, पृ.39

कथा साहित्य में देश, काल, संस्कृति आदि विशेष रूप से रचे-पचे होते हैं । इसलिए मूल कृति में वर्जित घटनाओं, संकल्पनाओं, परिस्थितियों आदि से अनुवादक परिचित होना आवश्यक है । इनके अलावा उसे कथा साहित्य के शैली एवं शिल्प के सूक्ष्म तत्त्वों से भलीभाँति अवगत होना आवश्यक है । साथ ही मूलकृति की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों के परिवेश को समझना नितांत आवश्यक है । मिथकीय संकल्पनाओं एवं सांकेतिक शब्दों की अर्थछटाओं का संकेत करना आवश्यक होता है । इस सब के लिए यह भी आवश्यक है कि अनुवादक को उपन्यास कला, कहानी कला, उपन्यास शिल्प विधान तथा कहानी शिल्प विधान का अच्छा ज्ञान हो ।[1] फिर भी प्रत्येक अनुवादक की कुछ सीमाएँ होती .हैं । अनुवादक कभी-कभी अभिव्यक्ति के लिए पूर्णतः स्वतंत्र नहीं होता । ए.एफ. टाइटलर के अनुसार - "It is not easy for one who walks in trammels to exhibit an air at grace and freedom."[2]

कथा साहित्य में शैली का अपना विशिष्ट स्थान होने से अनुवाद में शैली की समस्या भी अनुवादक के समक्ष सर्वत्र मुँह खोले खड़ी रहती है । साहित्य का एकमात्र माध्यम भाषा होने के कारण शैली का संबंध मूल रूप से भाषा के साथ है ।

अनेक समस्याओं के बावजूद हिन्दी में कथा साहित्य का सर्वाधिक अनुवाद हुआ है । कैलाशचन्द्र भाटिया लिखते हैं "साहित्य अकादमी द्वारा विभिन्न भाषाओं से लगभग 34 उपन्यास और 13 कथा संग्रह हिन्दी में अनूदित कराए गए । (यह संदर्भ 1985 तक का है) इनके अलावा कन्नड़, मराठी, बंगाली, गुजराती, उर्दू आदि भाषाओं से अनुवाद द्वारा भारतीय ग्रामीण परिवेश हिन्दी में आया है ।"[3]

इस प्रकार कथा साहित्य में भी देश, काल, संस्कृति, शैली आदि को लेकर अनेक समस्याएँ आती हैं जिनका अनुवादक को सचेत रहकर सटीक अनुवाद करना रहता है । बोलियों के शब्द, विशिष्ट लहजे, आंचलिक रूप आदि अनेक समस्याओं से कथा साहित्य के अनुवादक को जूझना होता है ।

1. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.90
2. Essay on the Principles of Translation, A.F.Tytler, Page 133
3. अनुवाद कला : सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ.116

स्थानों, व्यक्तिनामों आदि के लिप्यंतरण में भी कम समस्या पैदा नहीं होती । कथा साहित्य की भाषा जनभाषा होती है अतः भाषाशैली के जीवन्त मुहावरों, शैली आदि की सही पकड़ अनुवादक को होनी चाहिए । नए शब्दों जो बोलियों या आंचलिकता के कारण आए हों तो उनका यथार्थ प्रतिशब्द न मिले तो निकटतम समानार्थी शब्द प्रयोग करके या पाद टिप्पणी लिखकर समस्या से बचा जा सकता है ।

8.5.3 नाटक और अनुवाद :

खड़ी बोली में नाटक लिखने का सूत्रपात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885 ई.) से हुआ । भारतेन्दु ने नाट्य रचना के लिए संस्कृत के नाट्यशास्त्र के साथ-साथ पाश्चात्य नाट्यतंत्र को भी ग्रहण किया । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'नाटक' नामक निबंध में लिखा है - "किन्तु वर्तमान समय के कवि तथा सामाजिक लोगों की रुचि उस काल की अपेक्षा अनेकांश में विलक्षण है, इससे सम्प्रति प्राचीनमत अवलम्बन करके नाटक-दृश्य-काव्य लिखना युक्तिसंगत नहीं बोध होता है । नाटकादि दृश्य-काव्य प्रणयन करना हो तो प्राचीन समस्त रीति ही परित्याग करें, यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि जो सब प्राचीन रीति या पद्धति आधुनिक सामाजिक लोगों की मतपोषिका होगी, वह सब अवश्य ग्रहण होगी, अब नाटक में आशीः प्रभृति नाट्यालंकार, कहीं प्रकरी, कहीं पंचसंधि या ऐसे ही अन्य विषयों की कोई आवश्यकता नहीं रही। संस्कृत नाटक की भाँति हिन्दी नाटक में इनका अनुसंधान करना या किसी नाटकांग में इन्हें यत्नपूर्वक रखकर हिन्दी नाटक लिखना व्यर्थ है ।"[1]

भारतेन्दु ने विषय और शिल्प की दृष्टि से युगीन संदर्भों के अनुकूल कतिपय नाटकों का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया । बंगला नाटक 'विद्यासुन्दर' प्रबोध चन्द्रोदय, पाखंड विडंबना, धनंजयविजय, मुद्राराक्षस आदि अनेक नाटकों को हिन्दी में उन्होंने अनुवाद किया ।[2]

प्राचीन युग में साहित्यकार की सफलता की चरमसीमा नाटक की रचना माना जाता था । साहित्य की यह विधा अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय है । प्राचीन ग्रीक नाटकों का अनुवाद हमें प्रायः अंग्रेजी के माध्यम से मिलता आया है । प्राचीन संस्कृत नाटकों का अनुवाद आधुनिक

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ. रामनिवास गुप्त, पृ.455
2. वहीं ।

भारतीय भाषाओं में प्रचुर मात्रा में किया गया है ।[1] इसके अलावा नाटक के विकास के लिए वांछित उपादान, यथा-नृत्य, संगीत, अभिनय विषयक टिप्पणियाँ, वैदिक युग से ही वेदसूक्तों तथा संहिताओं में प्राप्त होती हैं । संस्कृत में नाटक की गौरवशाली परंपरा को भास, कालिदास, श्रीहर्ष, शूद्रक, विशाखादत्त, राजशेखर, जयदेव आदि ने पूर्णत्व तक पहुँचाया । डॉ. मंजुलादास का कहना है कि "यह विड़म्बना ही है कि हिन्दी-साहित्य में नाट्यलेखन और नाट्यालोचना की परंपरा अनेक वर्षों तक विच्छिन्न रही, जिसके कारण अनुवाद का कार्य प्रारंभ ही उन्नीसवीं सदी में आकर हो पाया । नाटक तथा अनुवाद का संबंध भी काव्य के अनुवाद के समान सरल नहीं है, क्योंकि नाटक एक त्रिआयामी विधा है और उसमें 'अभिनेय तत्त्व' या 'नाटकीयता' की रक्षा अनुवादक को करनी रहती है ।"[2]

साहित्य की सभी विधाओं में जटिलता की दृष्टि से कविता का अनुवाद सबसे जटिल होता है, उसके बाद नाटक का अनुवाद आता है । नाटक के अनुवाद की समस्याएँ कविता के अनुवाद से काफ़ी भिन्न है । नाटक का सीधा संबंध रंगमंच से होता है इसलिए इसमें अभिनेय तत्त्व होता है । अतः अनुवाद करते समय अनुवादक को अभिनय कला का ज्ञान अपेक्षित है । डॉ. राम गोपाल सिंह का कहना है कि "नाटक के दो तत्त्व होते हैं - कथा तत्त्व और शिल्प तत्त्व । कथा तत्त्व का सांस्कृतिक परिवेश अनुवादक के लिए अत्यंत महत्त्व का होता है । सांस्कृतिक परिवेश में मूल नाटक में सन्निविष्ट रूढ़ियाँ, आचार-विचार, रीति-नीति परंपराएँ, आदर्श, संबोधन, पारिवारिक संबंध आदि अनेक स्तर समस्या बनकर सामने आते हैं । भिन्न संस्कृति के नाटक का अनुवाद सर्वथा भिन्न संस्कृति की भाषा में करना शिल्पगत दृष्टि से सरल नहीं है । कथावस्तु, कथोपकथन एवं संवाद, देश-काल एवं वातावरण, रंगमंचीयता, भाषाशैली और विशिष्ट उद्देश्य आदि सभी की पूर्ति अनुवादक को नाटक के अनुवाद में करनी होती है ।"[3]

डॉ. भोलानाथ तिवारी का कहना है "नाटक दो प्रकार के होते हैं : मात्र पठनीय और अभिनेय । ठीक इसी प्रकार नाटक के अनुवाद भी दो प्रकार के हो सकते हैं - मात्र पठनीय और अभिनेय । मूल नाटक मात्र

1. अनुवाद कला, सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ.84
2. अनुवाद : सिद्धान्त और व्यवहार, डॉ. मंजुला दास, पृ.44
3. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.89

पठनीय हो या अभिनेय, यदि अनुवादक अपने अनुवाद को मात्र पठनीय बनाना चाहता है तो कोई ख़ास ऐसी परेशानी नहीं होती, जैसी केवल नाटक के अनुवाद तक सीमित हो । वह अनुवाद प्रायः वैसे ही किया जाएगा, जैसे उपन्यास, कहानी आदि का होता है । उसकी भाषा आवश्यकतानुसार मूल नाटक की भाषा के अनुरूप या विशिष्ट पाठक वर्ग की दृष्टि से जो उपयुक्त हो, रखी जा सकती है । वास्तविक समस्या वहाँ आती है, जहाँ अनुवादक अपने अनुवाद को अभिनेय भी बनाना चाहता है । अनुवादक को इस स्थिति में मूल नाटक की मंच-परंपरा का तथा जिस काल की जिस भाषा में अनुवाद किया जा रहा है, उसकी मंच-परंपरा का ज्ञान अवश्य होना चाहिए । मूल की परंपरा को जाने बिना अनुवादक नाटक के उन प्रतीकात्मक संकेतों को नहीं पकड़ पाएगा तथा लक्ष्यभाषा की रंगोचित दृष्टि से नहीं उतार पाएगा । उसे मूल की मंचीय साज-सज्जा, प्रकाश-प्रभाव, ध्वनि-संयोजन आदि के प्रति संवेदनशील होकर मूल को समझना होगा तथा लक्ष्यभाषा की मंचीय साज-सज्जा, प्रकाश प्रभाव, ध्वनि-संयोजन आदि के अनुकूल नाटक को रूपायित करना होगा ।"[1]

नाटक में भाषा की भूमिका महत्त्वपूर्ण है । भाषा में शैली तथा शब्द चयन अति महत्त्वपूर्ण हैं जिनके कारण नाटक में जीवन्तता आती है । अतः अनुवाद करते समय वाक्य संरचना, शब्द चयन, मुहावरे आदि का निर्वाह करना होता है । यदि नाटक ऐतिहासिक है तो उस ऐतिहासिक काल की भाषा का प्रयोग करना उचित है, यदि नाटक सामाजिक है तो पात्र, नागरिक या देहाती, शिक्षित, अनपढ़, नौकर आदि हों तो उनके अनुरूप भाषाशैली का प्रयोग करना होता है । विभिन्न आंचल, धर्म आदि की शब्दावली का प्रयोग लक्ष्य भाषा में करना होता है जो अति कठिन हो सकता है । मूल नाटक में पात्र शिक्षित है तो उसकी भाषा अलग होगी और नोकर या अशिक्षित पात्र की भाषाशैली अलग ही होगी जिसे लक्ष्यभाषा में उतारना आवश्यक होता है नहीं तो नाटक में जीवन्तता नष्ट होने की संभावना बढ़ जाती है । बोलचाल के शब्द भी नाटक में होते हैं जिन्हें अनुवाद में उतार पाना बड़ा ही कष्टसाध्य होता है । गधामजूरी, मगजमारी, माथापच्ची आदि शब्द कहीं किसी कोश में नहीं मिल सकते ।

"परेशान मत करो"

---

1. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.141

"दिमाग मत चाट"

"मगज की नस मत खींच"

"दिमाग का दहीं मत कर"

"दिमाग मत खा" आदि विभिन्न शैलियों को अनुवाद में उतार पाना कठिन है । इसी तरह "He is my husband.", "वह मेरा शौहर है", "वे मेरे पति हैं", "वह मेरा आदमी है", "वे इसके पिताजी है", "मेरा घरवाला है" आदि विभिन्न शैली में कहा जा सकता है परन्तु नाटक में पात्र की पात्रता-देशकाल, व्यवहार आदि को ध्यान में रखकर अनुवाद करना होता है । बड़ी बहू : देखना, ये आ रहे हैं क्या ? छोटी बहू : नहीं, ये रहे हैं । उपरोक्त संवाद में अनुवादक को 'ये' का अर्थ मालूम होगा तो ही सटीक अनुवाद हो पाएगा । नाट्क की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के अनुरूप ही नाटक का अनुवाद करना होता है । इसके लिए केवल पाठक और श्रोता ही नहीं अपितु दर्शक की मनोवृत्ति और ग्रहण क्षमता को भी केन्द्र में रखना होता है । प्रत्येक संस्कृति में नाटक या मंच की दृष्टि से कुछ बातें वर्जित होती हैं और कुछ आवश्यक होती हैं । अनुवादक इन वर्जनाओं और अनिवार्यताओं का सविशेष ध्यान रखे यह आवश्यक है ।

8.5.4 निबंध और अनुवाद :

साहित्य की अनेक विधाओं में निबंध विधा अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए है । विशिष्ट मनःस्थिति से प्रस्फुटित गद्यमय रचना निबंध है । किसी एक विचार या विषय से प्रभावित होकर, अपने विचारों और भावों की क्रिया-प्रतिक्रिया को लेखक जो जीवन्त अभिव्यक्ति प्रदान करता है उसे निबन्ध कहते हैं ।[1] पाठक की मनोवृत्ति को विचार एवं भाव की दृष्टि से प्रभावित करने का हेतु होने से निबन्ध में लालित्य अधिक होता है जबकि वस्तु तत्त्व गौण हो जाता है ।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की शुरूआत से ही निबन्धकारों ने सामान्यतः जीवन के नैतिक मूल्यों, सांस्कृतिक आदर्शों और लोकमानस को सचेत करने वाले उद्‌देश्यों के परिप्रेक्ष्य में निबन्ध लेखन की प्रवृति को गति दी । रामवृक्ष बेनीपुरी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, देवेन्द्र सत्यार्थी, भगवतशरण उपाध्याय, डॉ. जयनाथ 'नलिन', विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, प्रभाकर माचवे, गोपालप्रसाद व्यास, डॉ. आत्मानन्द मिश्र, हरिशंकर परसाई, ठाकुर प्रसाद सिंह, बरसानेलाल चतुर्वेदी, मधुसूदन पाटिल, विवेकीराय, लक्ष्मीकान्त,

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ. रामनिवास गुप्त, पृ.605

लक्ष्मीचन्द जैन, अजातशत्रु, रवीन्द्रनाथ त्यागी, डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी, यशवन्त कोठारी आदि अनेक साहित्यकारों ने विभिन्न विषयों को लेकर सुप्रसिद्ध निबन्ध लिखे हैं ।[1]

अनुवाद के संदर्भ में निबन्ध विधा का अनुवाद, साहित्य की अन्य विधाओं - कविता, नाटक आदि की अपेक्षा सरल होता है । क्योंकि निबन्ध में मुख्यतः विचार, भाव, तत्त्व ही प्रधान होते हैं । इसलिए निबन्ध का अनुवाद अधिकांशतः भावानुवाद ही होता है । परन्तु निबन्ध का अनुवाद सदैव सरल होता है यह भी संभव नहीं है । कभी-कभी निबन्ध का विषय, निबन्ध की भाषाशैली आदि अनुवादक के सामने समस्यारूप हो जाते हैं । चूँकि निबन्ध के विषय और भाव अनन्त हैं इसलिए अनुवादक को इस अन्नतता का एहसास तो होना ही चाहिए । निबन्ध किसी आध्यात्मिक विषय को लेकर लिखा गया हो तो उसकी पारिभाषिक शब्दावली से अनुवादक अच्छी तरह वाक़िफ होना चाहिए । अतः पारिभाषिक शब्द अनुवादक के लिए समस्यारूप हैं । किसी तकनीकी क्षेत्र के विषय को लेकर लिखे गए निबन्ध में अनेक तकनीकी शब्द प्रयुक्त होते हैं जिन्हें अनुवादक को सावधानीपूर्वक लक्ष्यभाषा में उतारना होता है ।

निबन्ध के अनुवाद में भाषाशैली भी समस्या पैदा करती है । विचारों को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करने का हेतु अधिकांश निबन्धों में होता है, इसलिए निबन्ध में प्रस्तुत विषय से जुड़ी काव्य पंक्तियाँ, शेर-शायरी, कहावतें, लोकोक्तियाँ भी समस्या बनकर सामने आती हैं । ऐसी स्थिति में अनुवादक को भाषा का सातत्य बनाए रखते हुए काव्य, पंक्तियों का शेर-शायरी का पद्य में ही अनुवाद करना आदर्श माना गया है, परन्तु फिर भी बात न बने तो भावानुवाद या यथोचित रूप से इन्हें छोड़ देना चाहिए ।

इसके अलावा निबन्ध के अनुवाद में एक और समस्या अनुवादक को खा जाती है : निबन्ध के शीर्षक की । निबन्ध के शीर्षक का शब्दानुवाद न करके निबन्ध के विषय और लक्ष्यभाषा के अनुरुप ही करना उचित होता है । निबन्ध का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग यह शीर्षक होता है । शीर्षक को पढ़कर ही पाठक उसके भीतर की सामग्री को जानने की रूचि रखता है । अतः शीर्षक सटीक छोटा और आकर्षक होना चाहिए जिससे कि शीर्षक को पढ़ते ही पाठक निबन्ध को पढ़ने के लिए लालायित हो सके । निबन्ध के विचारों,

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ. रामनिवास गुप्त, पृ.606, 607

भावों को स्पष्ट करने के लिए अनुवादक विचारों और भावों के समर्थन में अपनी तरफ से भी कुछ जोड़ सकता है । विचार और भाव संप्रेषित हो जाएँ यही निबन्धानुवाद का लक्ष्य रहता है ।

8.5.5 आलोचना और अनुवाद :

जिस निबन्ध का लक्ष्य, सैद्धान्तिक या व्यावहारिक समीक्षा प्रस्तुत करना होता है उसे आलोचना कहा जाता है ।[1] किसी विचार या भाव की सैद्धांतिक या व्यावहारिक समीक्षा करना आलोचना है । आलोचना का आधार युगीन साहित्यिक अपेक्षाएँ होती हैं । प्रत्येक युग की साहित्यिक समीक्षा तद्युगीन साहित्यिक उपलब्धियाँ के निष्कर्ष और मूल्यों का निरूपण करती है ।[2] हिन्दी-आलोचना का आरंभ भारतेन्दु-युग में पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ था, परन्तु आधुनिक आलोचना का उत्कृष्ट रूप इस काल में पनप नहीं पाया था । 'हिन्दी प्रदीप' (1877-1910) ही एक ऐसा पत्र था जो अपेक्षाकृत गंभीर आलोचनाएँ प्रकाशित करता था ।[3] जबकि द्विवेदी-युग में हिन्दी-आलोचना का गंभीर एवं तात्विक रूप तो नहीं निखरा लेकिन उनकी कई महत्त्वपूर्ण पद्धतियाँ अवश्य विकसित हुई ।[4] इसके बाद छायावाद-युग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचना साहित्य को स्तरीय रूप प्रदान किया ।[5] गद्य-साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति छठे दशक के अंत में हिन्दी आलोचना भी नई सम्भावनाओं की ओर उन्मुख हुई ।[6]

अनुवाद के संदर्भ में आलोचना साहित्य का अनुवाद निबंधानुवाद से मिलता-जुलता है । आलोचना साहित्य का अनुवाद सीधा साधारण अनुवाद होता है । क्योंकि आलोचना किसी भी रचना का व्यावहारिक या सैद्धांतिक अध्ययन है । इसलिए अध्ययन करके निष्कर्षत: जो कुछ कहा जाता है वह सरल व सटीक होता है । ऐसी स्थितिं में अनुवाद में कोई विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता । परन्तु कभी-कभी आलोचना में कहावतों, मुहवरों और लोकोक्तियों का भरपूर उपयोग किया जाता है, इस समय अनुवादक को

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ. रामनिवास गुप्त, पृ.605
2. वही, पृ.610
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र पृ.476
4. वही, पृ.517
5. वही, पृ.593
6. वही, पृ.704

लक्ष्य भाषा में उनके अनुरूप कहावतें, मुहावरे और लोकोक्ति को रखना होता है, जो कष्टसाध्य हो सकता है । आलोचना में भाषाशैली साहित्यिक होती है जिससे अनुवाद करते समय साहित्यिक जो समस्याएँ आती हैं वे इतनी गहन-गंभीर नहीं होती कि जिनका निराकरण कठीन हो । आसानी से इन समस्याओं से बाहर निकला जा सकता है ।

8.5.6 भाषागत विचलन और अनुवाद :

भाषागत विचलन अर्थात् भाषा का वह प्रयोग जो सामान्य भाषा से हटकर किया गया हो । कविता की रचना करते समय कविताकार अपनी भावात्मक अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करने के लिए सामान्य भाषा से हटकर भाषा का विचलित प्रयोग करता है ।

भाषागत विचलन के संदर्भ में डॉ. राम गोपाल सिंह लिखते है - "साहित्यिक भाषा, भाषा का एक विशिष्ट रूप है जिसे पश्चिमी साहित्यशास्त्र में विचलित रूप कहा गया है तथा भारतीय साहित्यशास्त्र में वक्ररूप । पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में विचलन की अवधारणा अरस्तू के समय से स्थापित है । अपने 'काव्यशास्त्र' में 'काव्य पदावली' के संदर्भ में वे कहते हैं कि प्रचलित मुहावरे में थोड़ा परिवर्तन कर देने से भाषा में चमत्कार आ जाता है (अरस्तू का काव्यशास्त्र पृ.58) ।[1]"

शब्दों को मान्य क्रम में न रखकर शैली को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिए विचलन का प्रयोग किया जाता है । पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में और शैलीविज्ञान में विचलन की अवधारणा का बहुत अधिक महत्त्व रहा है । डॉ. राम गोपाल सिंह लिखते हैं कि क्विंतिलियन के अनुसार काव्य में संगति और संबद्धता लाने के लिए सामान्य वाक्य योजना को तोड़ना भी पड़ जाता है । कॉलरिज ने भी शैली को प्रभावात्मक बनाने के लिए विचलन को विशेष महत्त्व दिया है । उनके अनुसार कविता के मूल में भावों का वेग रहता है और उस वेग के परिणामस्वरूप अभिव्यक्ति भी विशिष्ट अर्थात् विचलनमयी होती है । शैली के विचलनमयी होने का समर्थन मुकारोवस्की, बर्नाड ब्लाख, रिफातेअर, रोजर फाउलर, रैन्सम, स्टीफन उल्मेन, रिवर्ड ओमान, एंक्विस्ट, जोफ्री लीच आदि ने भी किया है ।[2]

1. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.37
2. अनुवाद भारती, अंक 8, जनवरी-मार्च 1997 में प्रकाशित डॉ. राम गोपाल सिंह का लेख भाषा विचलन और अनुवाद, पृ.5

भारतीय काव्यशास्त्र में भामह का मानना है कि अलंकार वक्रता है, वक्रता अतिशयोक्ति है और अतिशयोक्ति लोकोत्तर अर्थ है, लोकोत्तर अर्थ सामान्य भाषा से भिन्न होता है - इसे ही विचलन कहते हैं । विचलन हमेशा सहेतुक होता है । डॉ. राम गोपाल सिंह का कहना है कि विचलन भाषा के ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ, वर्तनी, लेखन, छंद आदि सभी स्तरों पर हो सकता है ।

1. ध्वनिगत विचलन :

मान्य ध्वनि के स्थान पर अन्य सार्थक ध्वनि को रखना ध्वनिगत विचलन कहलाता है । जैसे - "इथथे अगली बथ मेली हो थकती है, थेक्थपियल को थलाम" यहाँ 'स' के स्थान पर 'थ' ध्वनि का प्रयोग किया गया है । बच्चों की तोतली बोली में 'स' का 'थ' हो जाता है ।

2. संज्ञा विचलन :

इस प्रकार के विचलन में एक संज्ञा के स्थान पर दूसरी संज्ञा का प्रयोग किया जाता है । जैसे -

कर्ताकारक - टूटे आँधियों के पैर (तीसरा सप्तक, पृ.205)

रात की हथेली पर चाँद जब निकलता है (फिल्मी गीत)

कर्मकारक - वे आएँ, सड़कों पर हँसी टाँगते हुए । (कविताएँ, 1965, पृ.17)

करणकारक - खबरों के अपच से सबके सब मरेंगे । (जलसाधर, श्रीकांत वर्मा, पृ.10)

संबंधकारक - यह होटल शाकाहारी है और शाकाहारी होने के साथ-साथ कुछ खद्दर का भी जान पड़ता है । (रागदरबारी, श्रीलाल शुक्ल, पृ.10)

अधिकरणकारक - अपनी निगाह रंगनाथ की ओर घुमाई । अहा ! क्या हुलिया था । नवकंजलोचन कंजमुखकर कंजपद कंजारुणं । पैर खद्दर के पाजामें में, सर खद्दर की टोपी में, बदन खद्दर के कुर्ते में ।

3. सर्वनाम विचलन :

एक मैं, मैं हूँ
एक मैं, मैं ओढ़े हुए हूँ,
एक मैं, मुझे लोगों ने उढ़ा रखा है
एक मेरी पूजा करनेवालों ने
एक मेरे ऊपर थूँकने वालों ने
इन चार मैंओं के नीचे दबी यह लाश ।

यहाँ मैं के बहुवचन के रूप में 'मैंओं' का प्रयोग करके डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अपनी कविता 'शब्दग्रंथ' में विचलन किया है ।

4. **क्रिया-विचलन :**

मेरा डर मुझको चर रहा है । (संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ.17)

5. **विशेषण - विचलन :**

ज्यों गदराया धुआँ हो चले घना । (तीसरा सप्तक पृ.203)

6. **क्रिया विशेषण-विचलन :**

यहाँ दरख़्तों के साये में धूप लगती है
चलो यहाँ से चलें, और उम्र भर के लिए ।

7. **सहप्रयोग विचलन :**

मेरे शब्द एक लहरियाता दोगाना बन
उकड़ूँ बैठ लोगों पर भिनभिनाने लगे ।
(आत्महत्या के विरुद्ध, रघुवीर सहाय, पृ.9)

यहाँ व्यक्ति की तरह 'उकड़ूँ बैठ' ने और मक्खी की तरह 'भिननभिनाने' में सहप्रयोग विचलन हुआ है ।

8. **वाग्भाग विचलन :**

विशिष्ट अनुभूति को व्यक्त करने के लिए एक वाग्भाग की जगह दूसरे वाग्भाग का प्रयोग वाग्भाग विचलन है जैसे -

भारत एक कुर्सीप्रधान देश है कविता -
पहले लोग सठिया जाते थे
अब कुर्सिया जाते हैं ।
मेरे दोस्त !
भारत एक कृषिप्रधान नहीं
कुर्सी प्रधान देश है ।

इसी तरह एक विज्ञापन में अमिताभ बच्चन की अदा में -
रिश्ते में तो हम सबके बाप लगते हैं
नाम है - अमूलताभ मक्खन ।

9. **लिंग विचलन :**

काव्य में कोमलता, लघुता, कठोरता आदि के लिए पुल्लिंग शब्दों की जगह स्त्रीलिंग का प्रयोग किया जाता है । जैसे -

आह यह मेरा गीला गान
वर्ण - वर्ण है उर की कंपन
शब्द - शब्द है सुधि की दंशन
चरण - चरण है आह ।

10. अर्थ विचलन :

साहित्यिक भाषा में अर्थगत विचलन भी देखने मिलते हैं । धूमिल द्वारा 'व्याकरण' शब्द का प्रयोग अर्थ-विचलन के संदर्भ में -

उसकी आदत
दुनिया के व्याकरण के खिलाफ़ थी (संसद से सड़क तक पृ.36)

11. मुहावरा :

लोकोक्ति विचलन - कभी-कभी साहित्य में मुहावरा-लोकोक्ति विचलन में देखने मिलता है जैसे -

"यद्यपि मैं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का क ख ग तो क्या अ आ इ ई भी नहीं जानता ।"

के. पी. एस. मेनन की अंग्रेजी पुस्तक 'द लेंप एण्ड द लेंप स्टैण्ड' का मुनीश नारायण सक्सेना ने हिन्दी अनुवाद 'चिराग तले उजाला' नाम से किया है । इसके अलावा शीर्षक विचलन का प्रयोग भी साहित्य में मिलता है जैसे -

झूठा सच, गुनाहों के देवता, माँस का दरिया, जंगल की बेटी, जिंदा मुरदे, गिरवी रखी धूप, खुश्बू के शिलालेख, मिट्टी की बारात, साये में धूप, सिंदूर की होली, अंगूर की बेटी, आस्था के चरण, ठेले पर हिमालय, बोलते क्षण आदि ।

इस प्रकार साहित्य में साहित्यकार विचलन का प्रयोग किसी विशिष्ट उद्देश्य से ही करते हैं । भावों को प्रभावीरूप से संप्रेषित करने का यह माध्यम अति प्रभावपूर्ण है । अनुवाद के संदर्भ में, इस प्रकार के विचलन की जानकारी अनुवादक को अति आवश्यक रूप से होनी चाहिए नहीं तो अनुवाद हास्यास्पद भी हो सकता है । अर्थ का अनर्थ होने की शतप्रतिशत संभावना रहती है । जैसे -

'मेरा डर मुझको चर रहा है' का अनुवाद करते समय यदि अनुवादक 'चर' का Eat कर देगा तो हास्यास्पद स्थिति पैदा हो जाएगी ।

वास्तव में तो विचलन साहित्यिक, भाषा का एक अंग है, अतः

अनुवादक इस विचलन को ठीक से समझ नहीं पाएगा तो लक्ष्यभाषा में उसे उतारना बड़ा ही कष्टसाध्य होगा । साहित्यिक रचना का अनुवाद शब्दज्ञान से नहीं बल्कि साहित्यिक विविध पहलुओं की जानकारी के कारण ही उत्तम स्तर का होता है । अतः विचलन की जानकारी अनुवादक को होनी चाहिए । यह आवश्यक नहीं है कि स्रोत भाषा में विचलन का प्रयोग किया गया हो तो लक्ष्यभाषा में भी उसी प्रकार का विचलन अस्तित्व रखता हो । ऐसी स्थिति में स्रोत भाषा की सामग्री में जहाँ विचलन हुआ है उसे ठीक से समझकर लक्ष्यभाषा में सीधी सरल साहित्यिक भाषा में उतारा जा सकता है । इस प्रकार विचलन की समस्या से बचा जा सकता है । बस शर्त यह है कि स्रोत भाषा में प्रयुक्त विचलन को अनुवादक सही ढंग से समझ पाए ।

8.5.7 भाषागत चयन और अनुवाद :

भाषागत चयन से तात्पर्य है पर्याय, समानार्थी शब्द या शब्दसमूह का चुनाव । साहित्यिक भाषा के संदर्भ में भाषा-चयन का अर्थ है - समानार्थी भाषिक इकाइयों में से किसी एक का चुनाव । शैलीविज्ञान के संदर्भ में इसका अर्थ होगा - किसी भाषा में प्राप्त एकाधिक इकाइयों या व्यवस्थाओं में से अभिव्यक्ति के अनुरूप सम्प्रेषण के लिए किसी एक का चुनाव । अर्थात् वर्ण्य विषय के अनुकूल शब्दों एवं वाक्यों के प्रयोग को शैलीवैज्ञानिक शब्दावली में 'चयन' कहते हैं ।[1]

डॉ. राम गोपाल सिंह लिखते हैं कि "प्लेटो का मानना है कि किसी भी सच्चे कलाकार ने चाहे वह चित्रकार हो, गृह निर्माता हो या कवि अपनी सामग्री का चुनाव और उपयोग बिना समझे-बूझे नहीं किया है । सच्चे कलाकार का बराबर यही प्रयत्न रहता है कि उसकी कृति को एक निश्चित और प्रभावपूर्ण स्वरूप मिले । अरस्तू ने रचना के प्रत्येक स्तर पर चयन को महत्त्व दिया है । चयन के संदर्भ में सिसरो का मानना है कि कवि को रचना-प्रक्रिया के अवसर पर उपयुक्त का चुनाव और अनावश्यक का त्याग करते रहना चाहिए । डायोनीसियस ने 'ऑन द एरेन्जमेन्ट ऑफ़ द वर्डज़' ग्रंथ में शब्दों के चयन पर काफ़ी विस्तृत रूप से चर्चा की है । डायोनीसियस के अनुसार शब्दों की उचित व्यवस्था, उनका ठीक-ठीक क्रम साहित्यिक अभिव्यक्ति को आकर्षक बनाता है । शब्द योजना शैली का पर्याय ही बन गई है । क्विंतीलियन नें भी शब्द चयन

1. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.43

को शैली का प्रमुख आकर्षण माना है तथा उनका मानना है कि वाक्य-योजना में भी ऐसे चयन को महत्त्व दिया जाए जो काव्य में संगति और संबंद्धता ला सकने में समर्थ हो । चयन के संबंध में बेम्बो का मानना है कि शैली जैसी भी हो शब्द सदैव सबसे पवित्र, अदूषित, निर्मल, सुन्दर और आस्वाद्य हों । बेन जॉन्सन रचना को सायास सर्जना मानते हैं । हर्बट रीड का मानना है कि घटिया शैलियाँ शब्द चयन के सुविचार के अभाव में ही जन्म लेती हैं । लुकास भी चयन को महत्त्व देते हुए लिखते हैं कि अच्छा लेखक वह है जो जानता हो कि उसे क्या नहीं लिखना है ।[1]"

भारतीय साहित्यशास्त्र में वामन का काव्य पाक प्रकरण के संबंध में मानना है कि शब्द पाक शब्द विन्यास में निपुणता है अर्थात् शब्द पाक की पराकाष्ठा चयन की ही पराकाष्ठा है । आनन्दवर्धन के अनुसार अर्थ और उसकी अभिव्यक्ति में समर्थ विशेष शब्द इन दोनों को अच्छी तरह पहचानने का प्रयत्न कवि को करना चाहिए ।[2]

भाषागत चयन के अनेक स्तर हैं । डॉ. राम गोपाल सिंह के अनुसार हिन्दी में शब्द चयन के चार स्तर :

1. ध्वनि चयन :

साहित्यिक भाषा में सोद्देश्य शब्दों के चयन में कवि या लेखक ध्वनियुक्त शब्दों का चयन अपने विशिष्ट भावों की अभिव्यक्ति हेतु करते हैं, । जैसे कोमल भावों के लिए कोमल ध्वनि वाले शब्द, वीर, रौद्र आदि के लिए कठोर ध्वनिवाले शब्द, विकरालता या महाकायता के लिए महाप्राण ध्वनिवाले शब्दों का चयन किया जाता है ।

2. शब्द चयन :

साहित्यकार या कवि शब्द चयन अनेक आधारों पर करता है जिनमें युगीन प्रवृत्ति, छंद की आवश्यकता, ध्वनिगत प्रभाव, ध्वनि-साम्य द्वारा लयात्मकता का समावेश अर्थ का सूक्ष्म स्तर, अर्थ की दूरगामी व्यंजना, प्रकरण-उपयुक्तता की सिद्धि, आंचलिकता का समावेश, शैलीय आवश्यकता की पूर्ति आदि प्रमुख हैं ।

---

1. अनुवाद भारती, अंक 8, जनवरी-मार्च 1997 में प्रकाशित डॉ. राम गोपाल सिंह का लेख 'भाषा चयन और अनुवाद' पृ.21
2. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.45

3. रूप चयन :

रूपों की दृष्टि से चयन के लिए साहित्यकार के पास शब्द-चयन के समान खुला क्षेत्र नहीं होता क्योंकि व्याकरणिक रूप सीमित होते हैं । साहित्यकार भाववाचक संज्ञाओं के रूप, विशेषण के रूप, मानक-अमानक रूप, शैलीय रूप, आज्ञा के रूप आदि का चयन करता है ।

4. वाक्य चयन :

शैली का सबसे महत्त्वपूर्ण अवयव वाक्यरचना है । वाक्यरचना के स्तर पर लेखकों की शैली में भेद दृष्टिगोचर होता है । डॉ. भोलानाथ तिवारी ने "मैं नहीं जा रहा हूँ" वाक्य के हिन्दी में प्रयुक्त सत्रह शैलीय भेद गिनाए हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं : (1) मैं जा नहीं रहा हूँ । (2) मैं नहीं जा रहा। (3) मैं थोड़े जा रहा हूँ । (4) भला मैं कब जा रहा हूँ । (5) मुझे क्या काले कुत्ते न काटा है जो मैं जाऊँ ? (6) मैं तो जा चुका । आदि । (शैलीविज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.95-96) इसी प्रकार अशोक वर्मा ने "इस समस्या को हल करना कठिन है" वाक्य के 150 शैलीय भेद गिनाए हैं : (अनुवाद भारती, अंक 34-35, जुलाई-दिसम्बर 2003) जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं : (1) इस समस्या को हल करना असंभव है । (2) इस समस्या का हल संभव नहीं है । (3) इस समस्या को हल करना यानी आकाश के तारे गिनना । (4) इस समस्या को हल करने आज तक कोई पैदा नहीं हुआ। (5) इस समस्या का हल हो ही नहीं सकता । (6) कहीं हल होगी यह समस्या ? (7) कभी हल होती होगी यह समस्या । (8) कहीं समाधान नहीं होगा इस समस्या का । (9) रस्सी का बल चला जाएगा परन्तु यह समस्या हल नहीं होगी । (10) कोई हल नहीं है इस समस्या का । (11) कठिन कार्य है इस समस्या को हल करना । (12) मगर की दाढ़ों में दबी हुई मणि निकाली जा सकती है परन्तु इस समस्या को नहीं हल किया जा सकता । (13) क्रुद्ध हुए सर्प को पकड़कर सिर पर धारण किया जा सकता है परन्तु इस समस्या को हल नहीं किया जा सकता । (14) बालू से तेल निकाला जा सकता है परन्तु इस समस्या को हल नहीं किया जा सकता । (15) ढूँढने पर खरगोश के सिर पर सींग भी पाए जा सकते हैं परन्तु इस समस्या का हल नहीं पाया जा सकता । आदि ।

अनुवाद के संदर्भ में अनुवादक शब्द प्रति शब्द चयन करता है ।

अनुवादक यदि चयन की संकल्पना से परिचित है और वह मूल सामग्री में निहित साहित्यकार की चयन की विशेषताओं से भी परिचित है तो ऐसी स्थिति में वह चयन के माध्यम से अनुवाद को आदर्श अनुवाद की श्रेणी में रख सकता है । प्रत्येक भाषा के भाषी की अपनी संस्कृति, रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि उसका अपरिहार्य अंग उसकी शैली के रूप में रूपायित होते हैं । इन्हें किसी भिन्न संस्कृति वाली अन्य भाषा में अनुवाद के रूप में व्यक्त कर पाना मुश्किल ही नहीं असंभव भी होता है । ध्वनिगत चयन, शब्द चयन, रूप चयन, वाक्य चयन आदि विभिन्न स्तर पर अनुवादक को समानतापूर्वक चयन करना होता है ।

8.5.8 भाषागत अप्रस्तुत विधान और अनुवाद :

साहित्यकार जिसका वर्णन करता है वह 'प्रस्तुत' है और इसके विपरीत जो प्रस्तुत के वर्णन के लिए उपयुक्त हो उसे 'अप्रस्तुत' कहते हैं । साहित्य में 'अप्रस्तुत' का विधान करना, अप्रस्तुत को लाना या उसकी व्यवस्था करना 'अप्रस्तुत-विधान' कहलाता है । जैसे - "सिय मुख चन्द्र समाना" यहाँ सीता के मुख की तुलना चन्द्र से की है । 'मुख' प्रस्तुत है और 'चन्द्र' अप्रस्तुत है । डॉ. राम गोपाल सिंह के अनुसार 'प्रस्तुत' (उपमेय) के सदृश अप्रस्तुत (उपमान) का निर्देश करना अप्रस्तुत विधान कहलाता है । यह सादृश्य रूप - रंग, आकार, क्रिया आदि बहुविध तत्त्वों को लक्ष्य में रखकर दिखाया जाता है। भारतीय काव्यशास्त्र में सादृश्यमूलक अलंकारों का एकमात्र आधार है - अप्रस्तुत विधान तथा इन अलंकारों में सर्वप्रमुख उपमा अलंकार है, क्योंकि यही अलंकार शेष भी सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रामभूत उपजीव्य है ।[1]

साहित्यकार अप्रस्तुत का प्रयोग अनेक स्तरों पर करता है । रेशमी बाल, टमाटर-सा लाल, गाजरी, प्याजी, जामुनी, बैंगनी, दूधीया, गेहुँआ, कत्थई, रक्त, आदि विशेषण के रूप में अप्रस्तुत का प्रयोग करता है । प्रविशेषण अर्थात् विशेषण के रूप में भी साहित्यकार अप्रस्तुत का प्रयोग करता है जैसे - रेशम स्पर्शी कोमलता, मलयगंधी बदन आदि । क्रिया के रूप में - 'मेरा डर मुझे चर रहा है' । क्रिया विशेषण के रूप में - 'भाषा लँगड़ाती हुई भावों के पीछे चल रही है ।' क्रिया विशेषण की विशेषता दिखाने के लिए प्रक्रिया विशेषण के रूप में - 'वह मेरी कविताओं-सा मुझे लगेगा' । यहाँ

1. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.55

'सुन्दर' का लोप है जबकि 'कविताओं-सा' प्रक्रिया विशेषण है । इसके अलावा उपमेयोपमा, अनन्वय, अपह्नुति, प्रतीप, रूपक, प्रांति, उत्प्रेक्षा, स्मरण, दृष्टान्त, व्यतिरेक निदर्शना, अप्रस्तुत प्रशंसा, अतिशयोक्ति आदि के रूप में अप्रस्तुत का प्रयोग साहित्यकार करते हैं ।

अनुवाद के संदर्भ में जहाँ भी मूल रचना में अप्रस्तुत विधान आता है, अनुवादक को समझ लेना चाहिए कि यह अप्रस्तुत है । ऐसी स्थिति में अनुवादक को स्रोत भाषा की रचना के आधार पर लक्ष्य भाषा में यदि समतुल्य अप्रस्तुत मिल जाए तो उसे रखना होता है नहीं तो भावानुवाद से ही काम चलाना चाहिए । क्योंकि स्रोत भाषा की सामग्री में प्रयुक्त अप्रस्तुत का संदर्भ शब्दकोश से नहीं मिल सकता । इसके लिए अनुवादक को लक्ष्य भाषा की अप्रस्तुत विधान की रचना आदि की संपूर्णतः जानकारी अत्यावश्यक है । केवल शब्दकोशीय ज्ञान के आधार पर अनुवादक इस समस्या को हल नहीं कर सकता । उसे भाषा की अप्रस्तुत विधान व्यवस्था की गहन जानकारी होगी तो ही मूल के अर्थ तक पहुँच सकेगा । और मूल अर्थ ठीक से समझा होगा तब ही लक्ष्य भाषा की अप्रस्तुत विधान व्यवस्था में वह आसानी से ढाल सकेगा । अन्यथा अनुवाद में त्रुटि रहने की संभावना अधिक होगी । अप्रस्तुत विधान व्यवस्था यदि लक्ष्य भाषा में प्राप्त न हो तो भाव पकड़कर यथोचित अनुवाद करना अधिक उचित होगा ।

8.5.9 बिम्ब, प्रतीक और अनुवाद :

बिम्बात्मक भाषा किसी भी रचना के सौंदर्य की वाहक होती है । संस्कृत शब्द 'बिम्ब' का अर्थ-छाया, प्रतिमा, प्रतिबिम्ब आदि है, परन्तु यहाँ 'बिम्ब' शब्द अंग्रेजी के 'इमेज' शब्द के पर्याय के रूप में प्रचलित है । भारतीय काव्यशास्त्र में बिम्ब की संकल्पना भले ही न हो परन्तु साहित्य में बिम्ब या इससे मिलते-जुलते प्रयोग अक्सर देखने मिल जाते हैं । डॉ. राम गोपाल सिंह लिखते हैं कि कविता में बिम्ब स्थापना (इमेजनरि) प्रमुख वस्तु है । वाल्मीकि, कालिदास आदि प्राचीन कवियों में यह पूर्ण रूप से दिखाई देती है । अंग्रेजी कवि शैली बिम्ब विधान के लिए प्रसिद्ध हैं । मैथिलीशरण गुप्त सामान्यतः अपनी इतिवृत्तात्मकता के लिए प्रसिद्ध हैं, वे भी जगह-जगह इस नए ढंग के बिम्ब विधान में रुचि लेते दिखाई देते हैं । इसके बाद आधुनिक बिम्ब प्रक्रिया छायावादी कवियों में आरंभ होती है ।[1]

---

1. अनुवाद भारती, अंक 22-23, जुलाई-दिसंबर 2000 में प्रकाशित डॉ. राम गोपाल सिंह का 'बिम्ब विधान और अनुवाद' पृ.29

डॉ. राम गोपाल सिंह का मानना है कि बिम्बों का संबंध किसी-न-किसी इंद्रिय से होता है । इसलिए इंद्रियों के आधार पर बिम्बों का वर्गीकरण प्रचलित है । साहित्य में शब्द (नाद्), स्पर्श, रूप (दृश्य), रस (स्वाद) और गंध बिम्बों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया जाता है । शब्द (नाद) बिम्ब का संबंध सीधा कान से होता है । जैसे -

झूम- झूम मृदु गरज-गरज घनघोर
राग अमर अम्बर में भर निज रोर
झर - झर - झर निर्झर गिरि सर में
घर, मरु तरु मर्मर सागर में
सरित-तड़ित-गति चकित पवन में
अरे वर्ष के हर्ष बरस - तू - बरस रसधार । - निराला

इस प्रकार के नाद बिम्ब में प्राय: ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग किया जाता है । इसी तरह

चंचल मन चल
मचल - मचल चल
कल-कल बहते जल-सा
भू-तल, जल-तल, थल-तल में ।

स्पर्श बिम्ब का संबंध त्वचा से है । इस बिम्ब के माध्यम से स्पर्श की सिहरन का आभास होता है । रूप (दृश्य) बिम्ब का आँखों से संबंध होता है । नागार्जुन की कविता में कितनी बखूबी से रूप (दृश्य) बिम्ब की स्थापना हुई है :

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास,
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास,
कई दिनों तक लगी भींत पर छिपकलियों की गश्त,
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त,
दाने आए घर के अन्दर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन के ऊपर कई दिनों के बाद
चकम उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद ।

रस (स्वाद) बिम्ब का संबंध जीम से है । और गंध बिम्ब का सीधा संबंध नाक से है ।[1]

---

1. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.73-74

साहित्यिक भाषा में बिम्ब के माध्यम से कवि या लेखक अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावात्मक रूप से प्रस्तुत करके पाठक तक पहुँचाता है । हालाँकि प्रत्येक शब्द किसी-न-किसी उपादान का द्योतक होता है लेकिन अनुभूतिप्रधान भाषा में यह द्योतन आकृति विशेष से होता हुआ आकृति के गुणों का संदर्भ विशेष में उद्‌घाटन करता है । अतः भाषा का एक स्तर वह है जहाँ बिम्ब, केवल आकृतिमूलक न रहकर ऐन्द्रियता से ऊपर, गुण की दृष्टि से अनुभवगम्य हो जाते हैं ।

अनुवाद के संदर्भ में साहित्यिक अनुवादक को बिम्ब प्रक्रिया की जानकारी होना अत्यावश्यक है जिससे अनुवाद में भाषा का सौंदर्य शैलीगत स्तर पर भी संप्रेषित हो सके । साहित्यिक रचना में बिम्बों का अनुवाद-कार्य मात्र एक भाषा से दूसरी भाषा में कर देने का का सरल-सा कार्य नहीं है, एक रचनात्मक कार्य है । जैसे - "If winter comes, can spring be far behind." का अनुवाद "शीतऋतु आती है, तो क्या वसन्तु ऋतु नहीं आएगी ?" किया जाए या "सुख-दुःख जीवन का शाश्वत क्रम है" । कभी-कभी यह भी समस्या आती है कि बिम्बों का शाब्दिक अनुवाद किया जाए या भावानुवाद । सांस्कृतिक दृष्टि से भी स्रोत भाषा के बिम्बों का अनुवाद करते समय लक्ष्य-भाषा में उन्हें उतार पाने में कठिनाई का सामना करना ही पड़ता है । जैसे - जर्मन स्रोत भाषा में 'hen' बिम्ब का लक्ष्य भाषा हिन्दी में बिम्बानुवाद 'मुर्गी' करना अनुचित होगा, क्योंकि जर्मन भाषा में 'hen' कुलटा स्त्री का वाचक है अतः जर्मन 'hen' का हिन्दी में 'कुतिया' करना अधिक उचित होगा। अंग्रेजी स्रोत भाषा के 'hen' का बिम्बगत अर्थ होता है - 'कमज़ोर दिल' या 'बुझ़ दिल' । अंग्रेजी के elephant, Lion, donkey, आदि के हिन्दी में बिम्ब के रूप में समान अर्थ देते हैं ।

बिम्ब के पुनरूत्पादन द्वारा बिम्बानुवाद की समस्या को हल किया जा सकता है । डॉ. गार्गी गुप्त के अनुसार जहाँ स्रोत भाषा के बिम्बों का लक्ष्य भाषा में पुनरुत्पादन संभव न होने की स्थिति में उनका अनुवाद कर देना चाहिए । अनुवाद संबंधी यह स्थिति प्रायः आद्य बिम्बों (Archaik images) के संदर्भ में ही उत्पन्न होती है । ऐसे बिम्बों का अनुवाद या तो लक्ष्यभाषा की पौराणिकता में मिलनेवाली किसी समकक्ष कथा के आधार पर हो सकता

है या सामान्य भाषा में बिम्ब के अनुवाद के समय अनुवादक की स्वयं बिम्ब और उसके प्रसंगगत वातावरण को ग्रहण करके चलना होता है ।[1]

इसके अलावा पौराणिक या सांस्कृतिक बिंबों का अनुवाद करना और अधिक कठिन होता है । ऐसे बिंबों का अनुवाद या तो लक्ष्य भाषा की पौराणिकता में मिलनेवाली किसी समकक्ष कथा के आधार पर हो सकता है या सामान्य भाषा में बिम्ब के अनुवाद के समय अनुवादक को स्वयं बिम्ब और उसके प्रसंगगत वातावरण को ग्रहण करके चलना होता है । जैसे 'सरस्वती' का अंग्रेजी में अनुवाद 'म्युज़' के रूप में किया जा सकता है परन्तु 'गणेश' का कोई पर्याय शब्द अंग्रेजी में नहीं मिलता । 'सोने की लंका', 'अंगद-पैर', 'भगीरथ प्रयत्न' आदि के समकक्ष अंग्रेजी में कोई बिम्ब नहीं है । अनुवादक यदि लक्ष्य भाषा में इस प्रकार के बिम्बों को नहीं पाता तो ऐसी स्थिति में बिम्ब पुनरुत्पादन को छोड़कर बिम्ब द्वारा उत्पन्न भावों का अनुवाद करना चाहिए जिससे कि बिम्बगत समस्या से बचा जा सकता है । इस तरह के अनुवाद में मात्रात्मकता की अपेक्षा गुणात्मकता की ओर अधिक ध्यान रखना चाहिए ।

प्रतीक और अनुवाद :

भाषा के जन्म से पूर्व भी प्रतीकों का अस्तित्व तो था ही । आदिम मानव भी पशु-पक्षियों आदि के रूप पत्थरों पर रंगीन पत्थरों से अंकित करता था । धीरे-धीरे मनुष्य का विकास होता गया और प्रतीक व्यवस्था भी पनपने लगी । वेदों, उपनिषदों आदि में प्रतीकों का भरपूर प्रयोग किया गया है । इंद्र, मित्र, मरुत, सविता, रुद्र आदि देवता क्रमशः शक्ति, चेतना, बल, प्रेरणा, दंड आदि के प्रतीक हैं ।

कोई भी साहित्यकार अपनी रचना में विचारों या भावों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करता है । परन्तु भाषा के साथ अंतर और बाह्य प्रकार के अनेक आयाम जुड़े होते हैं । किसी भी भाषा की रचना के मुख्य आधार ध्वनि, शब्द, रूप, पदबन्ध, उपवाक्य, वाक्य आदि होते हैं । लेकिन भाषा अपनी सबल अभिव्यक्ति में कुछ अन्य आयामों का भी सहारा लेती है, जिनमें प्रतीक व्यवस्था का विशिष्ट योगदान रहता है । प्रतीक विवेचन विभिन्न बिन्दुओं जैसे - चिह्न, संकेतक, अभिसूचक, पूर्वसूचक, सूचक लक्षण

1. अनुवाद बोध, डॉ. गार्गी गुप्त, पृ.121

आदि के आधार पर किया जाता है । चिह्न के संबंध में भाषावैज्ञानिक मेरिस का मानना है कि चिह्न संकेतक और प्रतीक आदि अवधारणाओं का मूल रूप है । चिह्न संप्रेषण की लघुत्तम इकाई है । चिह्न किसी अर्थ विशेष का सूचक नहीं होता बल्कि अपनी आकृति के द्वारा अपना भाव संप्रेषित कर देता है । जैसे - गणित के '0' और '+' चिह्न हैं लेकिन '+' जैसे ही चिकित्सा संबंधी बोध कराने लगता है तो यही '+' संकेतक कहलाता है ।[1]

संकेतक में चिह्न के सारे गुणधर्म समाहित रहते हैं । संकेतक चिह्न को अर्थ प्रदान करता है । जैसे - चौराहे की लाल बत्ती, गार्ड की झंडी आदि संकेतक हैं । संकेतक का प्रमुख्र कार्य है अर्थ विशेष की सूचना देना । संकेतक देश काल के अनुसार बदल सकते हैं । जैसे भारत में हरा रंग निर्बाध होने का संकेतक है तथा लाल बाद्य होने का लेकिन पुर्तगाल में टेक्सी के ऊपर लाल-हरी बत्तियाँ इसका ठीक उल्टा संकेत देती है । प्रतीक से ही जुड़ी एक और संकल्पना है - अभिसूचक । अभिसूचक के लिए अंग्रेजी प्रतिशब्द है - 'सिम्प्टम' । यह भी चिह्न का ही विकसित रूप है । जैसे किसी रोगी की स्थिति, सामान्य जीवन से, सामान्य स्थिति से हटकर होती है, वह जो हटकर स्थिति है उसे अभिसूचक कहते हैं । प्रतीक से ही संबंधित अन्य संकल्पना 'प्रतिच्छबि' की है । अंग्रेजी में इसे 'आइकॉन' कहते हैं । जैसे - मूर्तियों की पहचान 'प्रतिच्छबि' के कारण है । प्रतीक से ही जुड़ी एक ओर अवधारणा है - 'पूर्वसूचक' । इसके द्वारा पूर्व की सूचना मिलती है । जैसे - धुआँ निकलना अग्नि की पूर्वसूचना है । अतः धुआँ अग्नि का पूर्वसूचक है । भीगी हुई सड़कों से सूचना मिलती है कि इसके पूर्व वर्षा हुई है । अतः भीगी हुई सड़क वर्षा का पूर्वसूचक है । बिम्ब भी प्रतीक से जुड़ी हुई एक अवधारणा है ।[2]

रामचन्द्र शुक्ल ने दो प्रकार के प्रतीक मानें हैं - (1) भावात्मक प्रतीक और (2) विचारात्मक प्रतीक । डॉ. भोलानाथ तिवारी ने स्रोत के आधार पर पौराणिक । (राम, रावण, एकलव्य, शंबूक, द्रौपदी, अमृत), ऐतिहासिक प्रतीक (ईसा, बुद्ध, गांधी), वनस्पति (गुलाब, कुकुरमुत्ता, फूल, काँटा), जीव प्रतीक (मछली, गाय, सिंह, भ्रमर, उल्लू, गधा, हारिल), ऋतु

1. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.68
2. अनुवाद भारती, अंक-5, अप्रैल-जून 1996 में प्रकाशित डॉ. राम गोपाल सिंह का लेख 'प्रतीक विज्ञान और अनुवाद 'पृ.6-7

प्रतीक (वसंत, पतझड़), समय (प्रातः, संध्या, रात, दिन) आदि प्रतीकों को माना है । पाश्चात्य विद्वान अरबन ने प्रतीक के दो प्रकार - (1) बाहरी प्रतीक और (2) आंतरिक प्रतीक मानें हैं । सी.एम. बावरा ने अपनी पुस्तक 'हेरिटेज ऑफ़ सिम्बॉलिज़्म' में प्रतीक के तीन प्रकार - (1) शब्द प्रतीक, (2) वाक्य प्रतीक और (3) प्रबंध प्रतीक मानें हैं ।[1]

अनुवाद के संदर्भ में प्रतीकों का अनुवाद बहुत ही कठिन होता है । सर्वप्रथम तो अनुवादक को ही स्रोत भाषा के प्रतीकों को समझना होता है । यदि स्रोत भाषा के प्रतीकों को ही ठीक से अनुवादक समझ नहीं पाएगा तो अनुवाद तो बिलकुल ही नहीं कर पाएगा । अधिकांश प्रतीकों के पीछे सांस्कृतिक संकल्पना, ऐतिहासिक संकल्पना, पौराणिक कथा आदि जुड़े होने के कारण लक्ष्य भाषा में इस प्रकार के प्रतीकों का मिल पाना प्रायः असंभव होता है । ऐसी स्थिति में स्रोत भाषा की सामग्री के प्रतीकों को कुशलतापूर्वक समझकर उन्हें भावानुवाद के रूप में लक्ष्य भाषा में उतारना ही उचित होगा । अन्यथा अनुवाद में अर्थ का अनर्थ होने की शतप्रतिशत संभावना रहती है । उदाहरण के तौर पर -

धम्मपद में लिखा है कि -

"मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वै व
रहठं सानुचरं हन्त्वा अनिघो याति ब्राह्मणो ।।"

इसका शब्दानुवाद होगा :

"माता-पिता, दो क्षत्रिय राजाओं तथा संपूर्ण राष्ट्र को
मार कर ब्राह्मण निष्पाप हो जाता है ।"

अनुवाद में प्रतीकों का ध्यान न करके शेष उपरोक्त अनुवाद भाषाकीय दृष्टि से उत्तम है व्याकरणिक दृष्टि से भी कहीं कुछ कमी नहीं है, परन्तु प्रतीकों की जानकारी होगी तो इस अटपटे अनुवाद का सही अनुवाद इस प्रकार होगा :

प्रतीकार्थ इस प्रकार है -

माता अर्थात् तृष्णा, पिता अर्थात् अहंकार, दो क्षत्रिय राजा अर्थात् कुचरित्र और कुविचार, अनुचरों सहित राष्ट्र अर्थात् संपूर्ण आसक्तियाँ । अतः

1. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.71

धम्मपद का उचित अनुवाद होगा - तृष्णा, अहंकार, कुचरित्र, कुविचार और संपूर्ण आसक्तियों पर विजय प्राप्त करके ब्राह्मण निष्पाप हो जाता है ।[1]

इस प्रकार प्रतीकों की जानकारी अनुवादक को होनी अति आवश्यक है । स्रोत भाषा के प्रतीक कभी-कभी लक्ष्य भाषा में मूल के पर्याय के रूप में नहीं प्राप्त हो सकते । ऐसी स्थिति में लक्ष्य भाषा में प्राप्त स्रोत भाषा के प्रतीकों को रखना चाहिए । जैसे हिन्दी भाषा में गधा और उल्लू मूर्ख व्यक्ति के प्रतीक हैं परन्तु अंग्रेजी में उल्लू बुद्धिशाली व्यक्ति का प्रतीक है । हिन्दी में रात अशुभ है जबकि अंग्रेजी में चांदनी रात शुभ है । अनुवादक इन स्थितियों में अपने प्रतीक-ज्ञान का भरपूर उपयोग करता है और करना ही होता है ।

8.5.10 मुहावरे : लोकोक्तियाँ और अनुवाद :

साहित्यिक भाषा में विचार या अभिव्यक्ति को अधिक धारदार रूप से प्रस्तुत करने के लिए मुहावरों तथा लोकोक्तियों का उपयोग किया जाता है । साहित्यकार अपनी बात को अधिक भावपूर्वक कहने के लिए इनका प्रयोग करता है । 'मुहावरा' मूलतः अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है 'अभ्यास' या 'बातचीत' । हिन्दी भाषा में यह शब्द पारिभाषिक रूप में एक ऐसे वाक्यांश का बोधक बन गया है जिससे किसी साधारण अर्थ की प्रतीति विलक्षण एवं प्रभावशाली ढंग से होती है । इसके द्वारा संप्रेषित अर्थ अभिधा से नहीं बल्कि लक्षणा या व्यंजनाशक्ति से होता है ।[2] जैसे 'आकाश के तारे तोड़ना' का अर्थ आकाश के तारों को तोड़ना नहीं है बल्कि 'असंभव कार्य करना' है ।

चूँकि मुहावरा किसी वाक्य का अंश होता है । परन्तु प्रत्येक वाक्यांश मुहावरा नहीं हो सकता । वाक्यांश किसी अर्थ विशेष के लिए उसी शब्दावली में रूढ़ हो जाता है तो वह मुहावरा बन जाता है । इसे रूढ़ोक्ति भी कहा जाता है । इसका स्वरूप स्थिर रहता है । इसके स्वरूप में परिवर्तन करने से 'मुहावरा' का अस्तित्व नष्ट हो जाता है । जैसे - 'आँखें खुलना' का 'चक्षु खुलना', 'नेत्र खुलना' आदि नहीं किया जा सकता ।

'लोकोक्ति' को 'कहावत' भी कहते हैं । 'लोकोक्ति' अर्थात् 'लोक की उक्ति' अर्थात् 'जनसाधारण की उक्ति' । लोकोक्ति में जीवन के अनुभवों को

1. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.72
2. हिन्दी व्याकरण, डॉ. मनीषा शर्मा, आदित्य, पृ.256

संक्षिप्त और विशिष्ट रूप से अभिव्यक्त किया जाता है । इसमें युगों से संचित एवं अनुभूत ज्ञान को संक्षिप्त में कहा गया होता है ।[1]

कभी-कभी मुहावरे तथा लोकोक्ति को समानार्थी समझ लिया जाता है परन्तु ये दोनों ही अपने आप में स्वतंत्र हैं । मुहावरा लाक्षणिक सार्थक वाक्यांश है तो लोकोक्ति संपूर्ण कथन है, वाक्य है । लोकोक्ति किसी घटना या प्रसंग से जुड़ा हो यह हमेशा आवश्यक नहीं है । लोकोक्ति कभी-कभी सूक्ति भी हो सकती है परन्तु मुहावरे के बारे में यह बात नहीं कही जा सकती । मुहावरे का प्रयोग भाषा में जीवन्तता, विलक्षणतता और सौंदर्यानुभूति के लिए किया जाता है जबकि लोकोक्ति किसी कथन को पुष्ट करने के लिए प्रयुक्त की जाती है । मुहावरा क्रियात्मक होता है अर्थात् मुहावरा एक क्रिया होती है तो लोकोक्ति संपूर्ण वाक्य होती है जो बिना किसी परिवर्तन के प्रयुक्त होती है ।[2]

अनुवाद के संदर्भ में अनुवादक जिन अनेक समस्याओं का सामना करता है उनमें से मुहावरे तथा लोकोक्ति के अनुवाद की समस्या भी भारी समस्या है । ऐसा माना जाता है कि जिन अभिव्यक्तियों में मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग किया गया हो वे अधिक सक्षम अभिव्यक्तियाँ होती हैं। यदि अनुवादक इन मुहावरों और लोकोक्तियों को छोड़ देगा तो यह उसकी कमजोरी मानी जाती है तथा लक्ष्य भाषा की क्षमता पर भी शंका होने लगती है । स्रोत भाषा के मुहावरे लक्ष्य भाषा में मिल ही जाएँ यह भी सदैव संभव नहीं होता । क्योंकि मुहावरे कई प्रकार से रूपायित होते हैं । कुछ मुहावरे अर्थ से बनते हैं तो कुछ शब्दों से संबंधित परम्परा, रूढ़ि, जनश्रुति से, कुछ लोककथा से संबंधित होते हैं । अनुवादक को इनका ज्ञान नहीं होगा तो वह इन्हें निरर्थक समझकर छोड़ देगा और अनुवाद मूल की तरह प्रभावपूर्ण, सचोट, सौंदर्यपरक नहीं हो सकेगा ।

लोकोक्तियाँ हमारे दैनिक जीवन के वार्तालाप की अंग हैं । हमारे बुजुर्ग विशेषत: गाँव के निवासी अपनी बातचीत में अपनी बात की पुष्टि में लोकोक्तियों का भरपूर प्रयोग करते हैं । अधिकांश लोकोक्तियाँ जीवन के अनुभव से गढ़ी हुई होती हैं और अनेक पीढ़ियों से पीढ़ियों को प्राप्त होती

1. हिन्दी व्याकरण, डॉ. मनीषा शर्मा, आदित्य, पृ.256
2. वहीं ।

हैं । पुराण-कथा, लोककथा आदि से भी लोकोक्तियों का आविर्भाव होता है । ऐसी लोकोक्तियों का विस्तृत अर्थ समझने के लिए उनमें सूचित कथा तत्त्व की जानकारी भी अनुवादक को होनी आवश्यक है । अतः लोकोक्ति को उसके स्रोत से अलग करके नहीं देखा जा सकता, क्योंकि स्रोत से अलग करने पर उसका विशिष्ट अर्थ नष्ट हो जाएगा ।

डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया लिखते हैं कि हू-ब-हू न मिलने पर समान भाव में प्रयुक्त मुहावरों लोकोक्तियों को अपनाया जाता है । जब समान भाव की अभिव्यक्ति न मिले तो अनुवाद में विस्तारपूर्वक समझाना ही उचित है । अधिकांश मुहावरे, लोकोक्तियाँ, पौराणिक-ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित होते हैं; जैसे - शबरी के बेर, सुदामा के तंदुल, दौपदी का चीर, भीष्म प्रतीज्ञा, भगीरथ प्रयास, अभिमन्यु का चक्रव्यूह, सोने की लंका, अंगद का पैर आदि । इन प्रयोगों के पीछे जो कथा है उसे भी पाद टिप्पणी में स्पष्ट कर देना चाहिए । भारतीय परिवेश में शायद इसे आवश्यक न समझा जाए, परन्तु भारत के पूर्वांचल क्षेत्र के आदिवासी लोगों की भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं के संदर्भ में यह आवश्यक होगा ।[1] इनमें रची-पची प्रभावशाली ध्वनिपरक योजना के कारण उनका अनुवाद सरल कार्य नहीं होता । यदि स्रोत भाषा के मुहावरे, लोकोक्ति के समान मुहावरे, लोकोक्ति लक्ष्य भाषा में न मिले तो इस स्थिति में भावानुवाद से काम चलाया जा सकता है, शब्दानुवाद से बचना चाहिए ।[2]

इस प्रकार मुहावरे तथा लोकोक्ति का अनुवाद करना अनुवादक के लिए टेढ़ी खीर होता है । स्रोत भाषा में प्रयुक्त मुहावरे लोकोक्ति का सही अर्थ समझकर लक्ष्य भाषा में संबंधित समान मुहावरे, लोकोक्ति खोजने होते हैं । अतः चूँकि मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ अधिकांशतः पौराणिक, सांस्कृतिक, लोककथाओं आदि स्रोतों से आते हैं, अनुवादक को स्रोत भाषा के पौराणिक, सांस्कृतिक, लोककथाओं जैसे स्रोतों तथा इसी प्रकार के लक्ष्य भाषा के स्रोतों की विशेष जानकारी होना अतिआवश्यक है । तभी अनुवाद सफल हो सकेगा ।

---

1. अनुवाद कला : सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ.67
2. अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ. राम गोपाल सिंह, पृ.88